मनुष्योंका पुनर्ज्जन्मनाशक ब्रह्मावर्त्त नामक प्रसिद्ध उत्तमतम कूप अवस्थित है। इस कूपोदकमें स्नानकर देवदेवकी अर्चना करनेसे, नैमिषारण्यकृत स्नानार्चनाकी अपेक्षा कोटि कोटि गुण अधिक पुण्य होता है। गोकर्ण नामक आयतनसे महाबल नामक महत्‌लिङ्ग यहां साम्बादित्यके समीप स्वयं आविर्भूत हुए हैं, इनका दर्शन और स्पर्शन करनेसे महाबल पापराशि भी वाताहत तुलाराशिकी तरह क्षणकालमें विदूरित होती है। कपालमोचनके सम्मुखस्थित उक्त महाबल लिङ्गका दर्शन करनेसे, निर्व्वाणनगरमें जानेपर महाबल प्राप्त होता है। महातीर्थ प्रभाससे अग्निभूषण नामक लिङ्गको लाकर मैंने ऋणमोचनके पूर्व्व प्रतिष्ठित किया है; उनके अङ्गकी सेवा करनेसे मनुष्य अग्निभूषणत्व पाते हैं और उनका उत्सव करनेसे प्रभासकी अपेक्षा कोटिगुण अधिक पुण्यसञ्चय होता है। उज्जयिनीसे भगवान् महाकाल स्वयं यहां आकर ओङ्कारेश्वरके पूर्व्व अवस्थित हुए हैं। पापनाशन इन महाकाल नामक लिङ्गके नाम कारणमात्रसे कलि और कालभय दूर होता है और उनका दर्शन करनेसे परम मोक्षपद मिलता है। अयोगन्धेश्वर नामक महालिङ्ग महातीर्थ पुष्करसे पुष्कर सहित मत्स्योदरीके उत्तर स्वयं आविर्भूत हुए हैं। मनुष्य अयोगन्धेश्वर कुण्डमें स्नान और अयोगन्धेश्वरका दर्शनकर पितृगणको संसारसागरसे निस्तार करेंगे। अद्रिहाससे महानादेश्वर लिङ्ग यहां उपस्थित हुए हैं; वह त्रिलोचनके उत्तर अवस्थित हुए हैं। उनका दर्शन करनेसे मुक्ति मिलती है। अवलोकनमात्रसे विमल सिद्धिप्रद महोत्कटेश्वर नामक लिङ्ग मरुकूटसे आकर यहां कामेश्वरके उत्तर विराज रहे हैं। विश्वस्थानसे विमलेश्वर लिङ्ग आकर स्वर्लीनके पश्चिम अवस्थित हैं। उनका दर्शन करनेसे भी विमल सिद्धि मिलती है। महाव्रतफलप्रद महाव्रत नामक महालिङ्ग महेन्द्रपर्व्वतसे उपस्थित हो स्कन्देश्वरके समीप अवस्थिति करते हैं। आदियुगमें देवता और ऋषिगणके स्तवसे तुष्ट हो यह महालिङ्ग, दुर्भेद्यभूभाग भेद करते हुए उत्पन्न हुए और मनोरथपूर्ण करनेकी वजह, उन्होंने उन्हें महादेव नामसे सम्बोधन किया। उसी अवधिसे वह लिङ्ग वाराणसीमें महादेव नामसे विख्यात हुए हैं। उक्त महालिङ्गने ही काशीधामको मुक्तिक्षेत्र बनाया है। जो मनुष्य अविमुक्तक्षेत्रमें महादेवकी अर्चना करते हैं, चाहे किसी स्थानमें मरनेसे भी वह शिवलोकमें जाते हैं। इसलिये मुमुक्षु व्यक्तिगण सब प्रयत्नसे काशीधाममें उनकी सेवा करें। जो लिङ्गरूपी महादेव; कल्पान्तरमें भी आनन्दकाननको परित्याग नहीं करते, यह उनका सर्व्वरत्नमय अनुपम शुभ प्रासाद दिखाई देता है। सर्व्वाभीष्टप्रद वाराण-

शीके अधिष्ठातृदेवता यह लिङ्ग है। हिरण्यगर्भतीर्थके पश्चिम अवस्थित रह काशीक्षेत्रकी रक्षा करते हैं। अधिक क्या, "महादेव" यह नाम ही सर्व्वलिङ्गस्वरूप है। जो सब मनुष्य, बाराणसीमें लिङ्गरूपधारी महादेवका दर्शन करते हैं, निःसन्देह वह त्रिलोकस्थित यावतीय लिङ्गका दर्शन कर चुके। मनुष्य बाराणसीमें एकबार मात्र महादेवकी अर्च्चना करनेसे कल्पान्त पर्य्यन्त परमानन्दसे शिवलोकमें वास करते हैं। पवित्रात्मा व्यक्ति. यदि श्रावणमासीय पर्व्वदिवसको सयत्न उक्त लिङ्गरूपी महादेवको यज्ञोपवीत दान करते हैं, उन्हें फिर गर्भयन्त्रणा भोगना नहीं पड़ती। हे प्रभो! पितामहेश्वर नामक लिङ्ग, फल्गु प्रभृति अष्टोत्तर श्राद्धकोटि तीर्थके साथ गया तीर्थसे काशीमें उपस्थित हुए हैं। जहां धर्म्मने धर्म्मेश्वर नामक महालिङ्गको साक्षीकर पहले शतअयुतयुग तपस्या की थी, वहां अवस्थित उक्त पितामहेश्वर लिङ्गकी अर्च्चना करनेसे मनुष्य परमानन्दसे एकविंशतिकुलके साथ निःसन्देह मुक्त हो सकते हैं! शूलटङ्क नामक लिङ्गरूपी महेश्वर तीर्थराज प्रयागसे तीर्थराजके साथ स्वयं यहां आकर विश्वेश-मण्डपके दक्षिण अवस्थान करते हैं। उनका वह स्वर्णमय सुनिर्म्मल प्रासाद सुमेरुके साथ स्पर्द्धा करता । प्रभो! आपने ही पहले युगके अन्तमें वर प्रदान किया था, कि काशीधाममें पहले ही पापनाशन उक्त महेश्वरकी पूजा करें और जो व्यक्ति काशीस्थित प्रयाग तीर्थमें स्नानकर महासमारोहसे यथाविधि अर्च्चनापूर्व्वक महेश्वरको नमस्कार करेंगे, वह निःसन्देह प्रयागकृत उक्त कार्य्यकी अपेक्षा कोटिगुण अधिक पुण्यभागी होंगे। महातीर्थ शङ्कुकर्णसे महातेजोविवर्द्धक महातेजः नामक लिङ्ग, काशीधाममें आविर्भूत हुए हैं; महा तेजोनिधि उन लिङ्गका सुनिर्म्मल प्रासाद माणिक्यनिचयसे निर्म्मित और उससे परम प्रभापुञ्ज परिव्याप्त है। जहां जानेसे किसी तरहके क्लेशका मुंह देखना नहीं पड़ता, उक्त लिङ्गका दर्शन, स्पर्शन; स्तवन और अर्च्चना करनेसे परमपद मिलता है। अधिक क्या, विनायकेश्वरके पूर्व्वस्थित उक्त महातेजः लिङ्गकी सम्यक् पूजा करनेसे, मनुष्य तेजोमय यानमें चढ़कर शिवलोक जाता है। रुद्रकोटि नामक परम पवित्र तीर्थसे महायोगीश्वर लिङ्ग स्वयं यहां प्रकाश हुए हैं। पार्व्वतीश्वर लिङ्गके समीपस्थ सर्व्वकर्म्म-भोगक्षयकारी इन लिङ्गका दर्शन करनेसे मनुष्योंको कोटिलिङ्गदर्शनका फल मिलता है। उक्त महायोगीश्वर लिङ्गके प्रसादके चारो ओर रुद्रगणनिर्म्मित सुरम्य कोटिसंख्यक रुद्रगणके प्रासाद शोभा पाते हैं। वेदवादी व्यक्तिगण, काशीधाममें इस स्थानको ही रुद्रस्थली कहकर कीर्त्तन करते हैं। कुमि,

कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी, मृग, मनुष्य, म्लेच्छ, दीक्षित, जो इस रुद्रस्थलीमें प्राण त्यागते हैं, वही रुद्रत्व पाते और उन्हें फिर संसारमें आना नहीं पड़ता। सहस्र सहस्र जन्मसे जो पाप सञ्चित होता है, रुद्रस्थलीमें प्रवेश करनेसे ही वह क्षयको प्राप्त होता है। सकाम हो या अकाम या तिर्य्यक्योनिगत ही हो, सब जीव रुद्रस्थलीमें जीवन विसर्ज्जन करनेसे परम निर्व्वाण पानेमें समर्थ होते हैं। एकाम्रक्षेत्रसे स्वयं कृत्तिवास नामक लिङ्ग यहां आये हैं। इस कृत्तिवास लिङ्गमें ऋषिगणके साथ स्वयं आप अवस्थित रह अनन्तकालमें भक्तगणके कर्णविवरमें दैववर्णित ब्रह्मज्ञान प्रदान करते हैं। सिद्धिप्रद इस क्षेत्रमें मरुजङ्गलसे चण्डीश्वर लिङ्ग उपस्थित हुए हैं; सदा उनका दर्शन करनेसे प्रचण्ड पापपुञ्ज भी खण्डित होता है। गणाध्यक्ष पाशपाणिके समीप जो व्यक्ति, इन चण्डीश्वरका दर्शन करते हैं, उन्हें परमपद मिलता है। अमृतकूट नामक गणेशके समीप भवनाशन भगवान् नीलकण्ठ नामक लिङ्ग कालञ्जर तीर्थसे स्वयं समुद्भूत हुए हैं। जो उक्त नीलकण्ठेश्वरकी अर्च्चना करते, वह भी नीलकण्ठ और शशिभूषण होते हैं। काश्मीरसे सदा जीवगणके विजयप्रद विजयेशनामक लिङ्ग आसकण्टकके पूर्व्व उपस्थित हुए हैं। उक्त विजयेश्वरकी अर्च्चना करनेसे संग्राम, राजद्वार, विवाद, सब जगह ही सदा विजयलाभ होता है। विरण्डातीर्थसे स्वयं भगवान् ऊर्द्ध्वरेता नामक महालिङ्ग समागत हो गणाध्यक्ष कुष्माण्डके सामने अवस्थित हैं। उक्त ऊर्द्ध्वरेता लिङ्गका दर्शन करनेसे परमगति मिलती और जो इन लिङ्गके भक्त हैं, उनको कभी अधोगति नहीं होती। मुण्ड नामक विनायकके उत्तर मण्डलेश्वरक्षेत्रसे श्रीकण्ठ नामक लिङ्ग उपस्थित हुए हैं; उक्त श्रीकण्ठके भक्तगण भी श्रीकण्ठस्वरूप होते हैं; दूसरे जन्ममें महालक्ष्मी कभी उन्हें परित्याग नहीं करतीं। महातीर्थ छागलाण्डसे भगवान् कपर्द्दीश्वर नामक लिङ्ग पिशाचमोचनतीर्थमें आप आविर्भाव हुए हैं। मनुष्य कपर्द्दीश्वरकी पूजा करनेसे निरयगामी नहीं होते और उत्कट पाप करनेपर भी कभी पिशाचत्व नहीं पाते। सूक्ष्मेश नामक लिङ्ग आम्रतकेश्वर नामक क्षेत्रसे परम मङ्गलास्पद इस क्षेत्रमें स्वयं समागत हो विकटद्विजसंज्ञक गणेशके समीप अवस्थित हैं। उक्त सूक्ष्मेश्वरका दर्शन करनेसे सूक्ष्मगति मिलती है। जयन्तेश्वर नामक लिङ्ग, मधुकेश्वरतीर्थसे आकर लम्बोदर नामक गणपतिके सामने विराज रहे हैं। जो व्यक्ति जाह्नवीजलमें स्नानकर उनका दर्शन करते हैं, वह वाञ्छित सिद्धिलाभ कर सर्व्वत्र विजयी होते हैं। श्रीशैलसे देवाधिदेव त्रिपुरान्तक नामक लिङ्ग

काशीधाममें आविर्भुत हुए हैं। श्रीशैल-की दर्शनमें जो फल कहा गया है, त्रिपुरान्तकका दर्शन करनेसे अनायास ही वह फल मिलता है। विश्वेश्वरके पश्चिम अवस्थित परम भक्तिके साथ इन लिङ्गकी पूजा करनेसे, मनुष्यको फिर गर्भमें प्रवेश करना नहीं पड़ता। सोमस्यस्थानसे समागत भगवान् मुकुटेश्वर वक्रतुण्ड नामक गणाध्यक्षके समीप अवस्थान करते हैं। उनका दर्शन और स्पर्शन करनेसे सब सिद्धि करतलगत होती है। सर्व्वसिद्धि प्रदाता त्रिशूली नामक लिङ्ग, कूटदन्ताख्य गणपतिके सामने, जालेश्वरसे समागत हुए हैं। एकदन्तके उत्तर महातीर्थ रामेश्वरसे जटीदेव आये हैं। उनकी अर्चना करनेसे सब अभिलाष पूर्ण होता है। त्रिमुखके पूर्व्व विसन्ध्याक्षेत्रसे त्र्यम्बकदेव समागत हुए हैं; वह अपने अर्च्चकगणका त्र्यम्बकत्व सम्पादन करते हैं। हरिश्चन्द्रक्षेत्रसे हरेश्वर लिङ्ग आकर हरिश्चन्द्रेश्वरके सामने अवस्थित हैं। उनकी पूजा करनेसे सदा जयलाभ होता है। मध्यमेश्वर स्थानसे सर्व्व नामक लिङ्ग काशीधाममें उपस्थित हो चतुर्व्वेदेश्वर लिङ्गके सामने विराजते हैं। परम सिद्धिप्रद उक्त लिङ्गकी पूजा करनेसे कोई मनुष्य फिर प्राणी-पदवी नहीं पाता। जहां सर्व्वयज्ञफल-प्रद यज्ञेश्वर लिङ्ग विराजमान हैं, वहां स्थलेश्वरतीर्थसे स्थलेश्वर नामक महालिङ्ग प्रादुर्भुत हुए हैं। परम श्रद्धाके साथ इन महालिङ्गकी अर्च्चना करनेसे इहकाल और परकालमें महती लक्ष्मी मिलती हैं। सुवर्णाख्य तीर्थसे सहस्राक्ष नामक लिङ्ग काशीधाममें समागत हुए हैं; उनका दर्शन करनेसे जीवगणके ज्ञाननेत्र खुलते हैं। शैलेश्वरके दक्षिण भगवान् सहस्राक्षेश्वरका दर्शन करनेसे शत सहस्र जन्मार्ज्जित पापराशि भी विलीन होती है। हर्षितक्षेत्रसे हर्षित नामक मनोहर लिङ्ग, इस स्थलमें आविर्भूत हुए हैं; मनुष्य उनका दर्शन और स्पर्शन करनेसे परम आनन्द लाभ करते हैं। मन्द्रेश्वरके समीप उक्त हर्षितेश्वरका प्रासाद शोभित है; इस प्रासादको देखनेसे मनुष्योंका हर्षस्रोत विरत होता है। रुद्रमहालयसे रुद्रेश्वर लिङ्ग स्वयं यहां उपस्थित हुए हैं। मनुष्य उनका दर्शन करनेसे रुद्र-लोकमें जाते हैं। जो मनुष्य काशीधाममें रुद्रेश्वरकी अर्च्चना करते हैं, निःसन्देह वह भी रुद्ररूपी होते हैं। त्रिपुरेश्वरके समीपस्थ भगवान् रुद्रेश्वरका दर्शन करनेसे, जीते, मरते, सब समयमें ही मनुष्य रुद्ररूपमें परिगणित होते हैं। परम धर्म्मजनक वृषेश्वर वृषभध्वज क्षेत्रसे समागत हो बाणेश्वर लिङ्गके पास अवस्थान करते हैं। केदारतीर्थसे ईशानेश्वर लिङ्ग भी आये हैं। प्रह्लादेश्वरके पश्चिम

उनका दर्शन करना कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति उत्तरवाहिणी जलमें स्नानकर ईशानेश्वरकी पूजा करते हैं, वह ईशानतुल्य प्रभावसम्पन्न हो ईशानलोकमें विराजते हैं। संहारभैरव नामक मनोहर मूर्त्ति भैरव, भैरवक्षेत्रसे समागत हो खर्व्वविनायकके दक्षिण अवस्थित हैं। यत्नके साथ उनका दर्शन करना विधेय और उनकी अर्च्चना करनेसे सर्व्वसिद्धि होती है। उक्त संहारभैरव काशीधाममें रह सबकी दुःखराशिका संहार करते हैं। कनखलतीर्थसे सिद्धिप्रद उग्र नामक लिङ्ग यहां आविर्भूत हुए हैं। उनका दर्शन करनेसे, मनुष्योंका उग्र पातक भी विनष्ट होता है। अर्कविनायकके पूर्व्व अवस्थित सदा इन लिङ्गकी सेवा करना उचित है; कारण, उनकी अर्च्चना करनेसे घत्युग्र उपसर्ग सब शान्त होते हैं। हे प्रभो! महाक्षेत्र वस्त्रापथसे भवनामसे भगवान् भीमचण्डके पास स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं। मनुष्य उक्त महेश्वरकी अर्च्चना करनेसे फिर भवमें नहीं आते और भूपतिगण उनके आज्ञावह होते हैं। पापराशिके दण्डकर्त्ता लिङ्गाकृति भगवान् दण्डी, देवदारुवनसे वाराणसीमें समागत हो देहविनायकके पूर्व्व अवस्थित हैं। उनकी पूजा करनेसे मनुष्यको फिर संसार देखना नहीं पड़ता। वहां ही भद्रकर्णह्रदके साथ शिव नामक साक्षात् लिङ्गरूपी शिव आये हैं। इस समय यह उत्तम तीर्थ उद्दण्ड नामक गणपतिके पूर्व्व अवस्थित है। जो मनुष्य उक्त भद्रकर्णह्रदमें स्नानकर शिव नामक लिङ्गकी अर्च्चना करते हैं, वह सर्व्वत्र परम शिव (मङ्गल) पाते और सब प्राणियोंका मङ्गल दर्शन और श्रवण करते हैं, इस ह्रदके सामने शङ्कर नामक लिङ्ग हरिश्चन्द्र तीर्थसे आये हैं। उनकी पूजा करनेसे जनगण जननीजठरमें प्रवेश नहीं करते। कलशेश नामक कालप्रतिष्ठित महालिङ्ग यमलिङ्ग नामक महातीर्थसे आकर चन्द्रेश्वरके पश्चिम अवस्थित हुए हैं; मित्रावरुणके दक्षिण यमतीर्थमें स्नानकर काललिङ्गका दर्शन करनेसे मनुष्योंको कलि और कालसे कोई भय नहीं रहता। यहां मङ्गलवार चतुर्दशी तिथिको जो काललिङ्गका उत्सव करते हैं, उन्हें अति पातकी होनेपर भी यमभवन देखना नहीं पड़ता। महादेव नेपालसे पशुपति यहां आये हैं। पिनाकपाणि देवदेव अपने पहले यहां ही ब्रह्मादि देवगणको मुक्तिलाभके लिये पाशुपतयोगका उपदेश किया था। उनका दर्शन करते ही मनुष्य पशुपाशसे विमुक्ति पाते हैं. कपाली नामक लिङ्ग करवीरकतीर्थसे आकर कपालमोचनतीर्थमें अवस्थान करते हैं। मनुष्य सर्व्वप्रयत्नसे उनका दर्शन करें; कारण, उनके दर्शनमात्रसे ही ब्रह्महत्यापातक भी विलीन होता है। देविका तीर्थसे उमा-

पति आकर पशुपतिके पूर्व्व अवस्थान करते हैं। 'उनका दर्शन करनेसे चिरसञ्चित पापराशि विनष्ट होती है। महेश्वर देवसे दीप्तेश नामक लिङ्ग आकर उमापतिके निकट अवस्थिति करते हैं। उक्त दीप्तेश्वरकी अर्चनादि करनेसे वह भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं और इहकाल और परकालका अन्धकार द्रवीभूत करते हैं। कायारोहणक्षेत्रसे आचार्य्य नकुलीश्वर नामक लिङ्ग महापाशुपत व्रतधारी शिष्यगणके साथ आकर महादेवके दक्षिण अवस्थित हैं। उनका दर्शन करनेसे शीघ्र गर्भप्रवेशकर अज्ञान विदूरित होता है। अमरेश नामक महालिङ्ग, गङ्गासागरसे समागत हुए हैं; उनके दर्शनमात्रसे अमरत्व भी दुर्लभ नहीं है। मनुष्यगणको भोगमोक्ष प्रदान करनेके लिये भगवान् भीमेश्वर, सप्तगोदावरीतीर्थसे काशीधाममें प्रकाश हुए हैं। नकुलीश्वरके सम्मुखस्थित उक्त भीमेश्वरका दर्शन करनेसे महाभीषण कलुषराशि भी तत्क्षणात् विनष्ट होती है। भूतीश्वरतीर्थसे स्वयं भस्मगात्र नामक लिङ्ग यहां प्रादुर्भूत हो भीमेश्वरके दक्षिण अवस्थित हैं। मनुष्य सदा उनका दर्शन करेंगे, उन्हें शतवर्षमें पाशुपतयोग सम्यक्रूपसे अभ्यास करनेपर जो फल मिलता है, वही फल लाभ होगा। स्वयम्भु नामक विख्यात लिङ्गरूपी शङ्कर, नकुलीश्वर तीर्थसे काशीधाममें स्वयं प्रकाश हुऐ हैं। जो मनुष्य सिद्धि नामक हृदमें स्नानकर महालक्ष्मीश्वरके सम्मुखवर्त्ती उक्त स्वयम्भु नामक लिङ्गकी पूजा करते हैं, उन्हें फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। प्रयाग तीर्थके पास धरणीवराह देवका विद्रुममय प्रासाद शोभा पाता है; आप देवगण, ऋषिगण और अनुचरगणके साथ रत्नकन्दर मन्दराद्रिसे समागत हुए हैं, यह सुनकर धरणीवराह देव भी काशीधाममें उपस्थित हुए हैं। यत्नातिशयके साथ उनका दर्शन करना कर्त्तव्य है; कारण, वह आपद्‌समुद्रनिमग्न शरणागत जनका उद्धार करते हैं। कर्णिकार तीर्थसे कर्णिकारकुसुमप्रभ निखिलोपसर्गनाशक गदाधारी गणपति भी आये हैं; धरणीवराहके उत्तर अवस्थित उक्त गणाध्यक्षकी पूजा करनेसे वह गाणपत्यपद प्रदान करते हैं। विरुपाक्ष नामक लिङ्ग, हेमकूटसे आकर महेश्वरके दक्षिण अवस्थित हैं; उनका दर्शन करनेसे संसारसे निस्तार मिलता है। गङ्गाद्वारसे हिमसमप्रभ मतङ्गेश्वर लिङ्ग समागत हुए हैं; ब्रह्मनालके पश्चिम स्थित उनका दर्शन करनेसे सर्व्वसिद्धि मिलती है। हे प्रभो! कैलास पर्व्वतसे कोटिसंख्यकगण और गणाधिप यहां समागत हुए हैं। उन गणगणने काशीधाममें भयङ्कर कपाटयुक्त

असंख्यद्वारशोभित, विविध यन्त्रविराजित सप्तस्वर्गतुल्य कितने ही दुर्ग निर्म्माण किये हैं। इस दुर्गनिचयमें कोटि कोटि रक्षिगण निरन्तर भ्रमण करते हैं। सुवर्ण रूप्य, ताम्र, कांस्य और सीसक निर्म्मित यह सब दुर्ग, अयस्कान्तकी तरह कमनीय और गगनस्पर्शी हैं और उन्होंने काशीधामकी चारो ओर एक महा शैल-दुर्ग और मत्स्योदरी नदीका जलपूर्ण गभीर एक परिखा प्रस्तुतकर उसे गङ्गाजलमें मिश्रित किया है। उक्त मत्स्योदरी अन्तश्चर और वहिश्चररूपसे द्विधाविभक्त हुई है। जिस समय गङ्गाजल, अन्तर्वाही हो मत्स्योदरीमें प्रवाहित होता है, उस समय बहुत पुण्य-सञ्चय रहनेसे ही मनुष्य मत्स्योदरीतीर्थ लाभ कर सकते हैं। उस समय इस तीर्थमें शत शत कोटि चन्द्रसूर्य्यग्रहणके समय और अन्यान्य यावतीय पर्व्व, यावतीय तीर्थ और यावतीय शिवलिङ्ग समागत होते हैं। उस समय जो मनुष्य मत्स्योदरीमें स्नानकर पितृगणको पिण्डदान करते हैं, उसे फिर जठरयन्त्रणा भोगना नहीं पड़ती। जिस समय मत्स्योदरीमें जाह्नवीजल मिलित होता है, तब यह अविमुक्तक्षेत्र मत्स्याकारको प्राप्त होता है। उस समय जो मत्स्योदरीमें स्नान कर सकें, वह मनुष्योंमें श्रेष्ठ और असंख्य पापराशि सञ्चय करनेपर भी यमपुरी नहीं देखते। अधिक क्या कहूं, नानातीर्थमें स्नान या कठोरतपोनुष्ठानका भी प्रयोजन नहीं है; यदि उक्त मत्स्योदरीमें एकबार स्नान किया जाय, तो फिर गर्भका भय कहां? जिन स्थानोंमें देवता, ऋषि या मनुष्योंके प्रतिष्ठित लिङ्ग हैं, मत्स्योदरीमें वहां स्नान करनेसे अनायास ही मोक्षपद मिलतां है। स्वर्ग मर्त्त्य पातालमें अनेकानेक तीर्थ हैं सही, किन्तु निःसन्देह कोई तीर्थ मत्स्योदरीके कोटिशंशके समान भी नहीं है। हे विभो! परम उदारकर्म्मा कैलासवासी गणपतिने ही इस तीर्थको निर्म्माण किया है। उक्त गणाधिपके पूर्व्व गन्धमादन पर्व्वतसे भूर्भुवः नामक लिङ्ग, स्वयं इस स्थानमें आविर्भूत हुए हैं। मनुष्यगण इन महालिङ्गका दर्शन करनेसे सुचिरकाल दिव्य उपभोग्य वस्तुका भोग करते हुए भूर्लोक, भुवर्लोक और महर्लोकसे भी उत्कृष्ट स्थानमें वास करते हैं। हे विभो! हाटकेश नामक महालिङ्ग भोगवतीके साथ सप्तपातालतलसे स्वयं यहां आये हैं और अनन्त वासुकि प्रभृति नागराजगणने मणि, माणिक्य और रत्नसमूह द्वारा यत्नके साथ उनका महाप्रासाद निर्म्माण किया है। ईशानेश्वरके पूर्व्व अवस्थित, रत्नमालाविभूषित उक्त हाटकेश्वरकी भक्तिभावसे पूजा करनेसे मनुष्य मान और सर्व्वसिद्धि पाते हैं और इहकालमें असंख्य

ऐहिक सुखभोगकर देहान्तमें निर्व्वाण पाते हैं। आकाशसे तारक नामक ज्योतिर्मय लिङ्ग आकर यहां ज्ञानवापीके सामने अवस्थित हैं! उक्त तारकेश्वर लिङ्गकी अर्च्चना करनेसे तारकज्ञान मिलता है। मनुष्य ज्ञानवापीमें स्नानकर सन्ध्यावन्दनादि कार्य्य और पितृतर्पण समाप्तकर मौनव्रतावलम्बन पूर्व्वक उक्त तारकेश्वरके दर्शनमात्रसे सब पापोंसे मुक्त हो परम पुण्यसञ्चय करते हैं और अन्तकालमें, ऐसा ज्ञान लाभ होता है, कि उसके प्रभावसे निस्तीर्ण हो जाते हैं! पहले जहां आपने किरातरूप धारण किया था, उस किराततीर्थसे भगवान् किरातेश्वर यहां आविर्भूत हो तारकेश्वरके पीछे विराज रहे हैं। मनुष्य उन्हें प्रणाम करनेसे फिर जननीजठरमें शयन नहीं करते। लङ्कापुरीसे मकरेश्वर नामक लिङ्ग समागत हो नैऋतकोणमें पौलस्त्यराघवके पीछे अवस्थिति करते हैं; उनके पूजित होनेपर मनुष्योंका राक्षसभय दूर होता और दुष्टोंका दमन होता है। जलप्रिय नामक पवित्र लिङ्ग जललिङ्ग स्थलसे आकर भागीरथीके जलमें अवस्थित हैं और यहां ही उनकी विविधरत्नराजिविराजित, विविध धातुमय अत्युच्च प्रासाद शोभा पाता है; कोई कोई पुण्यशील व्यक्ति उनका दर्शन पा सकते हैं। कोटीश्वर नामक परम लिङ्ग भी आये हैं। उनका दर्शन करनेसे कोटिलिङ्ग दर्शनका फल मिलता है। यह श्रेष्ठसिद्धिप्रद श्रेष्ठलिङ्ग, श्रेष्ठेश्वरके पीछे अवस्थित हैं। बड़वास्यसे समुद्भूत अनलेश्वर नामक लिङ्ग यहां नलेश्वरके सामने विराज रहे हैं; पूजा करनेसे वह मनुष्योंको सर्व्वसिद्धि दान करते हैं! विरजतीर्थसे देवदेव त्रिलोचन आकर अनादिसिद्ध त्रिपिष्टपलिङ्गमें अवस्थान करते हैं। जहां जीवगण तारकज्ञान पाते हैं, उस पवित्र पिलपिलातीर्थमें स्वयं देव ओङ्कारेश्वर, अमरकण्टकतीर्थसे आविर्भूत हुए हैं। जिस समय गङ्गा भूमण्डलमें अवतीर्ण नहीं हुई थीं, जिस समय केवल काशीधाम ही त्रिलोकके निस्तारके लिये आविर्भूत हुआ, उस समयसे ही उक्त ओङ्कारेश्वर यहां स्वयं आविर्भूत हुए हैं और उसी समयसे ही काशीधामने मुक्तिक्षेत्रसमूहमें प्रसिद्धि लाभ की। उक्त ओङ्कारेश्वरकी महिमा वर्णन करनेमें आपके सिवा और कोई भी समर्थ नहीं है। हे ईश! अपने अपने स्थानमें अंशमात्र रख इस काशीधाममें पूर्व्वोक्त महापुण्य सब शिवलिङ्ग सम्पूर्णभावसे लाये गये हैं और हे विभो! सब जगहोंसे उक्त देवगणके नानारत्न-विमण्डित, बहुल धातुमय, गगनस्पर्शी सुरम्य प्रासादनिचय भी ले आया हूं। हे सुरसत्तम! इन सब प्रासादका अग्रस्थित कलशमात्र देखनेसे मुक्ति मिलती है और उल्लिखित लिङ्गनिचयका नाम स्मरण करनेसे भी सहस्र-

जन्मार्ज्जित पापराशि क्षय होती है। हे स्वामिन्! अब आज्ञा दीजिये, कि आपका और कौन काम करना होगा और उसे भी सिद्ध हुआ ही समझियेगा। स्कन्दने कहा, हे कुम्भयोने! देवदेव महेश्वरने नन्दीकी यह सब बातें सुनकर प्रीतिप्रफुल्ल हृदयसे उनका समादरकर कहा, हे आनन्ददायिन् नन्दिन्! तुमने उत्तम काम किया है, अब मेरे आदेशानुसार, नवकोटि चामुण्डामें जो जहां भूतवेतालादि अपने अपने देवताके साथ अवस्थित हैं, तुम उनसे कहो, कि वाहन और आयुधके साथ काशीपुरीके रक्षार्थ चारोओर प्रतिदुर्गमें नियुक्त हों। भगवान् शङ्करने नन्दीको ऐसा आदेशकर शङ्करीके साथ मुक्तिरूप अङ्कुरके मूलस्वरूप त्रिपिष्टपक्षेत्रमें गमन किया। शिलादतनय नन्दीने भी शङ्कराज्ञा शिरोधारणकर चारो ओरसे चामुण्डाओंको बुलाकर प्रति दुर्गमें सन्निवेशित किया। जो मनुष्य! श्रद्धाके साथ पवित्र शिवलिङ्गवार्त्तापूर्ण यह अध्याय सुनेंगे, वह स्वर्गभोगके अन्तमें मोक्षपद पावेंगे। यह अष्टाधिक षष्टि लिङ्ग विवरण सुननेसे मनुष्यको फिर जननीजठरमें प्रवेश करना नहीं पड़ता।

एकोनसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥

सप्ततितम अध्याय।

चामुण्डास्थितिविवरण।

"हे पार्व्वतीनन्दन! शङ्करके आदेशानुसार विश्वके आनन्ददायी नन्दीने काशीपुरीकी रक्षाके लिये जिन देवियोंको जिस जिस स्थानमें सन्निवेशित किया, देव! अनुग्रह पूर्व्वक यथार्थरूपसे वह सब मुझसे कहिये। महेश्वरनन्दन कार्त्तिकेयने अगस्त्यकी ऐसी बात सुनकर आनन्दकाननमें परमानन्दसे जो सब देवी जिन स्थानोंमें अवस्थिति करती हैं, वह कहना आरम्भ किया। कार्त्तिकेयने कहा, इस काशीधाममें क्षेत्रकी परम इष्टदायिनी देवी विशालाक्षी गङ्गामें एक विशालतीर्थ निर्म्माणकर वहां विराज रही हैं। उक्त विशालतीर्थमें स्नानकर विशालाक्षी देवीको प्रणाम करनेसे दोनो लोकमें मङ्गलप्रद विशाल लक्ष्मी मिलती हैं। हे कुम्भयोने! जो मनुष्य, भाद्रकृष्णातृतीयाको उपवासी रह उक्त विशालाक्षीके समीप रात्रिजागरणकर प्रातःकाल चतुर्द्दश जन कुमारियोंको यथाशक्ति माल्य और वस्त्रालङ्कारादि द्वारा अलङ्कृतकर यत्नके साथ भोजन कराते हैं और फिर पुत्रभृत्यादिके साथ पारण करते हैं, उन्हें सम्पूर्णरूपसे वाराणसीवासका फल मिलता है। काशीवासी मनुष्यगणको उक्त तिथिकी समुदय विघ्नशान्ति और निर्व्वाणलक्ष्मी मिलनेके लिये उनका

महोत्सव करना चाहिये। मनुष्यगण चाहे किसी स्थानमें वास करें, वाराणसीमें यत्नपूर्व्वक धूप, दीप, मनोहर माल्य, उत्तमोत्तम उपचार, मणिमुक्तादिविनिर्म्मित अलङ्कार, विचित्र वितान, चामर और सुवासित सुन्दर नव दुकूलनिचय द्वारा विशालाक्षीकी अर्च्चना करनेसे परम मोक्षपद पाते हैं। हे मुने! उक्त विशालाक्षी देवीको अतिअल्पमात्र भी द्रव्यदान करनेसे वह इहकाल और परकालमें अनन्त फलजनक होता है। विशालाक्षीके महापीठके ऊपर जो कुछ दान जप, होम और स्तुति की जाय, उसका परिणाम मुक्तिप्रद होता है। उक्त देवीकी अर्च्चना करनेसे कुमारीगण, गुणशीलादिविभूषित रूपलावण्यसम्पन्न परम ऐश्वर्य्यशाली पति; गर्भिणी रमणीगण सर्व्वाङ्गसुन्दर तनय और असौभाग्यवती ललनागण परमसौभाग्य लाभ करती हैं। जो वन्ध्या हैं, उन्हें गर्भसञ्चार होता है और जो विधवा हैं, उन्हें फिर जन्मान्तरमें वैधव्ययन्त्रणा भोगना नहीं पड़ती। अधिक क्या, पुरुष, वा रमणी, जो मुक्तिकी वासना करें, उक्त विशालाक्षीका दर्शन, पूजन और उनका नाम श्रवण करनेसे उनका सर्व्वाभीष्ट सिद्ध होता है। गङ्गाकेशवके पास दूसरा एक ललिता तीर्थ है; वहां चित्ररक्षाकारिणी ललितागौरी विराज रही हैं। सब तरहकी सम्पत्ति लाभके लिये यत्नके साथ उनकी पूजा करना कर्त्तव्य है। उक्त ललितादेवीके पूजकगणका कभी कोई विघ्न नहीं होता। आश्विनमासकी कृष्णपक्षीय तृतीयाको उनकी अर्च्चना करनेसे स्त्री, पुरुष, सभी वाञ्छित फल पाते हैं। ललितातीर्थमें स्नानकर ललितादेवीको प्रणामपूर्व्वक थोड़ीसी स्तुति करनेसे भी सब जगह लालित्य लाभ होता है। हे मुने! विशालाक्षीके सामने विश्वभुजागौरी अवस्थिता हैं, जो मनुष्य काशीक्षेत्रके प्रति परम भक्तिमान हैं, वह उनलोगोंके महत् विघ्नका संहार करती हैं। सर्व्वाभीष्ट लाभके लिये शरत्कालमें उक्त देवीका नवरात्रव्यापी उत्सव करना कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति काशीस्थित उक्त विश्वभुजादेवीको प्रणाम करते हैं, किसी तरह वह दुरात्माके भयङ्कर उपसर्गसे प्रशमित नहीं होते और जिन दुरात्मागण द्वारा वह पूजिता और वन्दिता होती हैं, किसी तरहके विघ्न उनपर आक्रमण करने नहीं पाते। काशीधाममें ऋतुवाराहके पास वाराही नामक दूसरी एक देवी हैं; भक्तिके साथ उन्हें प्रणाम करनेसे कभी विपद्सागरमें निमग्न होना नहीं पड़ता और वहां ही देवी शिवदूती हैं, आनन्दकाननकी रक्षा और उसके विपक्षगणके भीतिप्रदर्शनार्थ वह त्रिशूलहस्तसे विराज रही हैं; उनका दर्शन करनेसे समुदय आपद् विनष्ट होती हैं। इन्द्रेश्वरके दक्षिण महामात-

इनके ऊपर अधिष्ठाता वज्रहस्ता ऐन्द्री देवी अवस्थिता हैं, उनका दर्शन करनेसे सदा सम्पद् लाभ होता है। स्कन्देश्वरके पास मयूरवाहना कौमारीशक्ति अवस्थान करती हैं; महत् फललाभके लिये अतियत्नके साथ उनका दर्शन करना चाहिये। महेश्वरके दक्षिण अवस्थिता वृषारूढ़ा देवी महेश्वरीकी अर्च्चना करनेसे, वह मनुष्योंको धर्म्मसमृद्धि दान करती हैं। निर्व्वाण नरसिंहकी समीपवर्त्तिनी चक्रहस्ता देवीनारसिंहीकी अर्च्चना करना मोक्षाभिलाषी मनुष्योंका कर्त्तव्य है। हंसारूढ़ा ब्राह्मी देवी, ब्रह्मेश्वरके पश्चिम अवस्थित रह गलितकमण्डलुजलसे विपक्षोंकी ताड़ना करती हैं; ब्रह्मविद्यालाभके लिये काशीस्थित उक्त देवीको ब्राह्मण, यति और तत्त्वावबोधी व्यक्तिगण सदा पूजा करें। गोपीगोविन्दके पश्चिम नारायणी देवी अवस्थित रह शृङ्गनिर्म्मित धनुसे निक्षिप्त भीषण शरनिकरसे काशीकी चारो ओर विघ्नराशिको उत्सारित करती हैं और उनकी उन्नत तर्ज्जनीमें चक्रास्त्र सदा भ्रमित होता है; मनुष्य उनका आश्रय ग्रहण करें। जो व्यक्ति उन्हें प्रणाम करते हैं, काशीमें उनका महा अभ्युदय होता है। देवयानीके उत्तर विरूपाक्षी देवी विराज रही हैं; जो मनुष्य भक्तिपूर्व्वक उनकी पूजा करते हैं, वह वाञ्छित सम्पद् पा सकते हैं। शैलेश्वरके निकटस्थित शैलेश्वरीकी अर्च्चना करें, वह अपनी तर्ज्जनी द्वारा सदा भक्तगणके उपसर्गोंका तर्ज्जन करती हैं। मनुष्यगण विचित्र फलदायक चित्रकूपमें स्नानकर चित्रगुप्तेश्वरके दर्शनके उपरान्त चित्रघण्टा देवीकी पूजा करें। ऐसा करनेसे मनुष्य बहु पातकयुक्त और धर्म्मपथभ्रष्ट होनेपर भी चित्रगुप्तकी लिपिके गोचर नहीं होते। स्त्री, या पुरुष, जो काशीधाममें चित्रघण्टाकी अर्च्चना नहीं करते, पद पदमें असंख्य विघ्नराशि उनपर आक्रमण करती हैं। चैत्रमासकी शुक्लतृतीयाको यत्नातिशयके साथ उनका महामहोत्सव और रात्रिजागरण करना कर्त्तव्य है। जो मनुष्य विविध उपचारसे उनकी अर्च्चना करते हैं, उन्हें फिर यमवाहन महिषकी गलघण्टाकी ध्वनि सुनना नहीं पड़ती। चित्राङ्गदेश्वरके पूर्व्व चित्रग्रीवा देवीको प्रणाम करनेसे, मनुष्य कभी यमयातना नहीं भोगते। जो व्यक्ति भद्रवापीमें स्नानकर भद्रनागकी सम्मुखवर्त्तिनी भद्रकालीका दर्शन करते हैं, उन्हें फिर अभद्रका (अमङ्गलका) मुंह देखना नहीं पड़ता। सिद्धिविनायकके पूर्व्व विराजमान हरसिद्धि देवीकी यत्नके साथ पूजा करनेसे महासिद्धिलाभ होता है। जो मनुष्य विधीश्वरके समीपस्थित विधिदेवीकी विविध उपचारसे विधिवत् पूजा करते हैं, वह विचित्र सिद्धि पा सकते हैं। प्रयागतीर्थमें स्नानकर निगड़भञ्जिनी

देवीकी अर्च्चना करनेसे मनुष्य कभी निगड़से पीड़ित नहीं होते। बन्दीव्यक्ति बन्धनसे मुक्ति पानेके लिये प्रति मङ्गलवारको भक्तिपूर्व्वक एकभक्त हो उक्त निगड़भञ्जनी देवीकी पूजा करें ; ऐसा करनेसे शृङ्खलादि बन्धनकी तो बात ही क्या, संसारबन्धन भी विच्छिन्न होता है। श्रद्धाके साथ उनके पदसेवकगणका कोई बन्धु यदि दूर देशमें बन्दी हो, वह भी निःसन्देह काशी-क्षेत्रमें उपस्थित होता है। अधिक क्या कहें, थोड़ासा नियम अवलम्बन करके भी यदि इन कशासन्दर्शधारिणी, भक्तबन्धन भेदिनी, उद्यत्टङ्कास्त्रधारिणी, तीर्थराज-समीपवर्त्तिनी देवीकी सम्यक् सेवा की जाय, तो वह शीघ्र समुदय अभीष्ट पूर्ण करती हैं। पशुपतिके पीछे अमृतेश्वरके पास विराजमाना अमृतेश्वरी देवीके अमृतकूपमें स्नानकर भक्तिभावसे उनकी अर्च्चना और प्रणाम करनेसे मनुष्य अमृतत्व (देवत्व) पाते हैं। वह दक्षिण हाथमें महामाया स्वरूप अमृतकमण्डलु धारण किये हैं और वामहस्तसे सबको अभय प्रदान करती हैं ; इस रूपमें उनका ध्यान करनेसे कौन व्यक्ति अमृतत्व नहीं पा सकता ? अमृतेश्वर-के पश्चिम और पितामहेश्वरके सामने सिद्धि लक्ष्मी देवी अवस्थिता हैं ; वह अर्च्चिता होनेपर सर्व्वसिद्धि प्रदान करती हैं। उक्त सिद्धिलक्ष्मी देवीके लक्ष्मीनिवास नामक कमलाकृति प्रासादका दर्शन करनेसे, कौन व्यक्ति लक्ष्मीलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता ? पितामहेश्वरके पश्चिम नलकूवरके सामने विराजमाना जगन्माता कुब्जादेवीकी पूजा करनेसे अशेष उपसर्ग विदूरित होता है ; इसलिये सुखार्थी व्यक्तिगणको यत्नातिशयके साथ उनकी अर्च्चना करना विधेय है। उक्त नलकूवरेश्वरके पश्चिम कुब्जे-श्वर लिङ्ग हैं और वहां ही त्रिलोकसुन्दरी-गौरी विराज रही हैं ; उनकी पूजा करनेसे वह सर्व्वाभीष्ट दान करती हैं और स्त्री कभी विधवा नहीं होतीं। साम्बा-त्यके समीप अवस्थिता दीप्ता नाम्नी महा-शक्तिकी अर्च्चना करनेसे, लक्ष्मी देदीप्य-माना होती हैं। जो मनुष्य श्रीकण्ठतीर्थमें स्नानकर पितृगणको यथाविधि जलाञ्जलि-दान और दानक्रिया समाप्तकर श्रीकण्ठे-श्वरकी समीपवर्त्तिनी जगज्जननी महा-लक्ष्मी देवीकी अर्च्चना करते हैं, वह लक्ष्मीके हाथसे परित्राण पाते हैं। सा-धकगणके परमसिद्धिप्रद महापीठ लक्ष्मी-क्षेत्रमें जो मनुष्य मन्त्रकी साधना करते हैं, वह अनायास ही सिद्धि पाते हैं। इस काशीधाममें सिद्धिप्रद अनेकानेक पीठ हैं सही, किन्तु उक्त महालक्ष्मी पीठके तुल्य परम लक्ष्मीदायक दूसरा पीठ नहीं है। महालक्ष्मी-अष्टमीको जो मनुष्य यथाविधि उनकी पूजा करते हैं, लक्ष्मी कभी उनका भवन परित्याग नहीं करतीं। महालक्ष्मीके उत्तर कुठारहस्ता हरकण्ठी

देवी अवस्थित रह प्रतिदिन काशीधामके विघ्नरूप महावृक्षनिचय छेदन करती हैं। महालक्ष्मीके दक्षिण पाशपाणि कौर्म्मी-शक्ति अवस्थिता है; वह प्रतिनियत सब क्षेत्रविघ्नोंका बन्धन करती हैं। मनुष्य उनकी पूजा करनेसे क्षेत्रसिद्धि पा सकते हैं और वायुकोणमें क्षेत्ररक्षाकरी शिखि-चण्डी देवी अवस्थानकर शिखिवत् चीत्कार करती हुई स्नुक्षण विघ्नसमूह भक्षण करती हैं। उनका दर्शन करनेसे मनुष्य-गणकी निखिल व्याधि विनष्ट होती है। पाशपुष्करपाणि भीमचण्डी देवी भीमे-श्वरके सामने वास करती हुई निरालस्य-भावसे सदा उत्तरद्वारकी रक्षा करती हैं; जो मनुष्य भीमकुण्डमें स्नानकर उक्त देवीका दर्शन करते हैं, उन्हें कभी भीषण यमदूतगणका मुंह देखना नहीं पड़ता। वृषभध्वजके दक्षिण छागवक्त्रेश्वरी देवी अवस्थिता रह दिन रात विघ्नरूप सब तरुपल्लव भक्षण करती हैं; उनके प्रसादसे काशीवास मिलता है, इसलिये महाष्टमी तिथिको उनकी पूजा करना विधेय है। सङ्गमेश्वर लिङ्गके दक्षिण विकटानन ताल-जङ्घेश्वरी देवी विराजती हुई तालवृक्षरूप आयुध द्वारा आनन्दवनकी निखिल विघ्न-राशिको विताड़ित करती हैं। उनका दर्शन करनेसे किसी विघ्नसे पीड़ित होना नहीं पड़ता। उद्दालकतीर्थमें उद्दाल-केश्वर लिङ्गके दक्षिण अवस्थिता यमदंष्ट्रा नाम्नी देवी निरन्तर विघ्नराशिको चर्व्वण करती हैं; जो उन्हें प्रणाम करते हैं, वह अशेष पातकी होनेपर भी कृतान्तसे भय नहीं पाते। दारुकेश्वरतीर्थमें दारुकेश्वरके समीप चर्म्ममुण्डा नाम्नी देवी विराज रही हैं; उनका तालु और वदन पातालमें, ओष्ठ आकाशमें और अधर वसुन्धरामें अवस्थित है। इन ब्रह्माण्ड ग्रासेच्छु, शुष्को-दरी, धमनि परिव्याप्ता देवीके सहस्र बाहु सागर पर्य्यन्त विस्तृत हैं। उनके एक हाथमें कपाल, दूसरेमें छूरिका और अन्यान्य सब हाथोंमें मेषमोदक शोभा पाते हैं। द्वीपिचर्म्मपरिधाना, कठोर अट्टाट्ट-हासिनी वह देवी शूलाग्र द्वारा क्षेत्रद्रोहि-योंका कलेवर विद्ध और पापियोंकी अस्थि कठोर होनेपर भी मृणालकी तरह अना-यास ही चर्व्वण करती हैं। उनका आभ-रण नृकपालमाला और आकृति अति भीषण है। उन्हें प्रणाम करनेसे मनुष्य क्षेत्रविघ्नसे निष्कृति पाते हैं। जैसे उक्त चर्म्म-मुण्डा, महामुण्डा देवी अविकल वह भी उसी तरह हैं; विशेषता मात्र यही है, कि महामुण्डा देवी मुण्डमालाविभूषणा हैं। उक्त दोनो ही देवी असीमशक्तिसम्पन्न परस्पर बाहुप्रसारणपूर्व्वक करतालि दे हंसती हुई क्षेत्रका रक्षाविधान करती हैं। हयग्रीवेश्वरतीर्थमें लोलार्कके उत्तर प्रच-ण्डवदना महामुण्डा नामक एक देवी अव-स्थिता रह सदा भक्तवृन्दका विघ्ननिचय

हरण करती हैं और यहां चण्डमुण्डा और महामुण्डा नामसे जो दो देवी हैं, उनके मध्यस्थलमें ही चण्डरूपिणी चामुण्डा देवी विराज रही हैं। काशीवासी मनुष्यगणको उक्त देवतात्रयकी यत्नके साथ पूजा करना चाहिये; कारण, वह मनुष्य द्वारा श्रद्धाके साथ स्मृता, दृष्टा, स्पृष्टा और पूजिता होनेपर सब उपसर्ग निवारणकर धन धान्य और पुत्रपौत्रादि प्रदान करती हैं। पूर्व्वोक्त महामुण्डाके पश्चिम शुभदायिनी स्वप्नेश्वरी नाम्नी एक देवी हैं। वह स्वप्नावस्थामें भक्तगणसे भावी शुभाशुभ कह देती हैं और वहां ही स्वप्नेश्वर नामक लिङ्ग हैं। किसी तिथिको पवित्र असिसङ्गममें स्नानकर उपवासी रह उनकी अर्चना करते हुए स्थण्डिलमें शयन करनेपर, नारी या नर सब व्यक्ति ही स्वप्नमें भविष्यद्‌ वृत्तान्तसे विदित हो सकते हैं। वहां स्वप्नेश्वरी रात्रिकालमें स्वप्नयोगमें भूत, भविष्यत्‌ और वर्त्तमान सब घटना व्यक्त करती हैं। यदि कोई इस विवरणसे परिज्ञात हों, तो आज भी वह प्रत्यक्ष कर सकते हैं। ज्ञानाभिलाषी मनुष्यगण अष्टमी, चतुर्द्दशी, नवमीके दिन, या रातमें यत्नके साथ उनकी अर्चना करें। उक्त स्वप्नेश्वरीके पश्चिम दुर्गा देवी अवस्थिता रह सदा काशीवासीके दक्षिण रक्षा करती हैं।

सप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥

एकसप्ततितम अध्याय।

दुर्गासुरके साथ देवीका युद्ध।

अगस्त्यने कहा। हे पार्व्वतीकुमार! किस तरह देवीका नाम दुर्गा हुआ और किस तरह उनकी अर्च्चना करना होती है, आप इस विषयमें मुझसे कहिये। स्कन्दने कहा, हे महाबुद्धे कुम्भयोने! जिस तरह उनका नाम दुर्गा हुआ है और साधकगण जिस तरह उनकी पूजा करेंगे, वह कहता हूं, सुनो। रुरु नामक दैत्यका पुत्र दुर्गनामक एक महादैत्यने घोरतर तपस्याकर पुरुषगणका अजेयरूप वरलाभ किया। फिर अपने भुजबलसे भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकादि समस्त पराजयकर आत्माधीनकर स्वयं ही इन्द्र, चन्द्र, वायु, वरुण, यम, अग्नि, कुबेर, ईशान, रुद्र, अर्क और वसुगणका काम करने लगा। तब उसके भयसे तपस्विगणने तपस्या और ब्राह्मणगणने वेदाध्ययन, परित्याग किया। अतिदुर्म्मद अपथगामी क्रूरकर्म्मरत उसके अनुचरगणने सब यज्ञागार चूर्ण, कितने ही सतियोंका सतीत्वनाश और बलपूर्व्वक परस्व अपहरणकर उपभोग करते रहे। सब नदियां विमार्गगामी, अग्नि प्रभाशून्य और अन्यान्य ज्योतिर्म्मय पदार्थ दीप्तिविहीन, दिगङ्गनाओंका वदनकमल म्लान, धर्म्मकार्य्य विलुप्त और अधर्म्माचरण आरम्भ हुआ था। उसके किङ्करगण ही अपने मायाबलसे मेघरूप धारण-

कर वर्षा करते थे। वसुन्धरा सदा सन्तप्ता होनेपर भी उसके भयसे प्रचुरशस्य प्रसव करतीं और वन्यतरुराजिसे भी सदा बहुत फल उत्पन्न होता था। अतिगर्व्वित उस दुर्गासुरने देवता और ऋषिगणकी सब पत्नियोंको बन्दी और सब वनौकस्को देवता बनाया था। मनुष्य या देवता सभी उसके भयसे भीत हो घरमें छिपे रहते थे; लोग विपद्ग्रस्त व्यक्तियोंसे सम्भाषण करके भी समादर नहीं करते थे। हे मुने! सद्वंशमें जन्म या सच्चरित्रतामें महत्त्व नहीं होता; केवल उच्चपद ही महत्त्वका और पदभ्रंश ही लघुताका कारण है। जो विपत्कालमें भी दैत्यके आज्ञावह नहीं होते, वही धन्य हैं। धनहेतु मलिनचित्त व्यक्तियोंको मृदुता कहीं दिखाई नहीं देती। जगत्में लघुताविहीन मृत्यु भी श्रेयस्कर है, किन्तु लघुतायुक्त देवत्व भी प्रार्थनीय नहीं। जिनका हृदयरूप सागर विपत्कालमें भी अपना गाम्भीर्य परित्याग नहीं करता, वही प्रकृत जीवित और पुण्यात्मा हैं। किसी न किसी समय अवश्य ही सम्पद् और किसी समय अदृष्टाधीन विपत्ति भी होती है; धीमान् व्यक्ति, इसलिये कभी धैर्य्यच्युत न हों। विचक्षण व्यक्तिगण, चन्द्र और सूर्य्यकी उदय और अस्तके समय एकरूपता देखकर ही अवस्थाविशेषसे हर्ष और अवस्था-विशेषसे विषाद परिहार करें। जो व्यक्ति आपद्ग्रस्त हो हीनता अवलम्बनकर विपन्न होते हैं, उनका दोनो लोक नष्ट होता है; इसलिये ही सर्व्वतोभावसे हीनताको परित्याग करें। जो आपद्कालमें भी धैर्य्यधारण कर सकते हैं, उन्हें इहकाल और परकालमें धैर्य्यप्रभावसे फिर आपद्स्पर्श करना नहीं पड़ता। इधर सुरगणके राज्य और सम्पद्विहीन हो भगवान् महेश्वरके शरणापन्न होनेपर सर्व्वज्ञ शङ्करने दुर्गासुरके निधनार्थ देवी भगवतीको आदेश दिया। तब भगवती भवानी महेश्वरकी आज्ञा पाकर हृष्टचित्तसे देवगणको अभय प्रदानकर समरमें उद्यता हुईं। फिर रुद्राणीने लावण्यच्छटासे त्रिलोकको मनोमुग्धकारिणी कालरात्रिको बुलाकर उस दुर्गासुरको बुलानेके लिये भेजा। फिर देवी कालरात्रिने दुष्टाशय दैत्यके पास उपस्थित हो कहा, "अहो दैत्याधिपते! तुम त्रैलोक्यसम्पद् परित्यागकर रसातलमें जाओ; देवराज ही फिर त्रिलोकके अधीश्वर होंगे और वेदवादियोंका वेदविहित क्रिया कलाप पूर्व्ववत् प्रवर्त्तित होगा। यदि इस विषयमें तुम्हें कुछ भी अहङ्कार हो, तो मैं तुम्हें संग्रामार्थ बुला रही हूं, आओ। अथवा यदि जीवनकी प्रत्याशा हो, तो देवराजके शरणापन्न हो महामङ्गलरूपिणी महे-

ख्वरोने ही तुमसे यह बात कहनेके लिये मुझे तुम्हारे पास भेजा है। यह तुम स्थिर समझो, कि मृत्यु तुम्हारी प्रतीक्षा करती है। अतएव हे महासुर! अब जो उचित समझो, वह करो। और यदि मेरी परमहितकर बात मानो, तो जीवन लेकर इसी समय पातालमें भाग जाना ही कर्त्तव्य है।" तब दैत्यराज देवी महाकालीकी ऐसी बात सुनकर क्रोधसे प्रज्वलित हो कहने लगा कोई है, कहां है, इसे धरो, इसे धरो! यह त्रैलोक्यमोहिनी मेरे भाग्यबलसे ही आज उपस्थित हुई है, इस महत्लाभके सामने त्रैलोक्यराज्यसम्पत्ति भी तुच्छ है। मैंने इसके लिये ही देवता, ऋषि और नृपगणको बन्दी किया है। आज मेरे अदृष्टगुणसे अनायास आप ही मेरे घर आई है। जिसके योग्य जो वस्तु है, शुभादृष्ठ होनेसे अरण्यमें या घरमें, आप ही आप वह मिलती है। इस समय अन्तःपुरचारिगण, इसे मेरे महत् अन्तःपुरमें ले जावें। आज इस विभूषिता ललना द्वारा मेरा राज्यविभूषित हुआ। आज समस्त दानववंशमें केवल महामति मेरा ही महान् अभ्युदय हुआ है। आज मेरे पूर्व्व पुरुषगण नाचें, बान्धवगण सुखसे विहार करें और कालान्तक मृत्यु और देवगण मुझसे अज्ञान्वित हों। वह ऐसा कह रहा था, उसी समय कञ्चुकिनिचय देवीको अन्तःपुरमें ले जानेके लिये वहां उपस्थित हुए। भगवती कालरात्रिने दैत्यपुङ्गवसे कहा, हे महाप्राज्ञ! दैत्यराज! तुम्हारे जैसे व्यक्तिको ऐसा उचित नहीं। हे राजनीतिज्ञगणके अग्रगण्य! तुम तो जानते ही हो, कि मैं दूती हूं; सुतरां पराधीन हूं! तुम्हारे जैसे भुजबलसम्पन्न महान् नृपतिगणकी बात क्या, नीच व्यक्ति भी कभी दूतगणका प्रतिकूलाचरण नहीं करते। हे महाराज! आमान्य दूतीके प्रति इतना आग्रह किसलिये? मैं तुम्हारे आदिम मात्रसे ही स्वयं उपस्थित हूंगी। हे दैत्यप! तुम मेरी कर्त्रीको समरमें पराजयकर मेरी जैसी शत सहस्र रमणीको यथेच्छ उपभोग करो। उनके देखते ही आज तुम्हारा और तुम्हारे बान्धवगणका पूर्व्वपुरुषोंके साथ परम सुखोदय होगा और तुम्हारा चिरचिन्तित सब अभीष्ट सफलता लाभ करेगा। वह अबला अति मुग्धा हैं, उनका कोई रक्षक नहीं है। वह सर्व्वरूपमयी हैं, तुम्हें एकबार उनका दर्शन् करना उचित है। वह जगत्की आकाररूपा ललना हैं, वह जहां अवस्थिता हैं, वह मैं दिखा दूंगी। केवल उन्हें धरलेनेसे ही तुम्हारी कोई कामना असम्पूर्ण न रहेगी। मैं अङ्गीकार करती हूं, कि ऐसा होनेसे कभी तुम्हारा सङ्ग

परित्याग न करूंगी। अतएव इस समय मेरे अहंकीचक्र के कष्टकिगणकी निवारण करो। तब महासुर दुर्गने उनकी ऐसी बात सुनकर क्रोधसे अभिभूत हो साक्षात् मृत्युकी दूतीस्वरूप कालरात्रि देवीको अन्तःपुरमें ले जानेके लिये अन्तःपुरवासियों-को आदेश किया। हे मुने! इन सब महाबलपराक्रान्त अन्तःपुरचारिगण उ-नसे ऐसा आदेश पा देवीको धरनेका उपक्रम करनेपर उन्होंने तत्क्षणात् हुङ्कारजनित अनलसे उन सबको भस्म कर डाला। फिर दैत्यपतिने उन सबको भस्मीकृत देख क्रोधसे तत्क्षणात् उस दूतीपर आक्रमण करनेके लिये दुर्द्धर, दुर्म्मुख, खर, शीरपाणि, पाश-पाणि, हनु, सुरेन्द्रदमन, यज्ञारि खड्ग-लोमा, उग्रास्य और देवकम्पन प्रभृति त्रिंशत् सहस्र दैत्यगणको भ्रूभङ्गीकर कहा, हे दानवगण! तुम लोग बिना विलम्बके इस दुष्टा दूतीको पाश द्वारा बांधकर वसन-भूषण विध्वस्त करते हुए केशाकर्षणकर ले आओ। फिर दैतेश्वरके ऐसे आदेश-क्रमसे पर्व्वतोपम दीर्घकाय दुर्द्धर प्रभृति दानवगण पाश, असि और मुद्गरादि नाना-विध अस्त्रशस्त्र धारणकर देवीपर आक्रमण करनेपर उद्यत हो उनकी निश्वास वायु-ताड़नसे दिग् दिगन्तरमें परिचालित हुए। शतकोटि परमित वह सब दैत्यगण इस तरह उड़कर देवी कालरात्रिका गमनमार्ग अवलम्बनकर वहांसे निकलते देख सहस्र सहस्र महासुरगण आकाश और भूमण्डल परिव्याप्त करते हुए उनके पीछे पीछे दौड़े। तब दैत्याधिपति दुर्गासुर शतकोटि रथी, द्विशताधिक दशकोटि गजारोही, कोटि अर्व्वुद परिमित अश्वारोही और असंख्य पतादिगणके साथ क्रोधसे निकला, उनकी आकृति अति भयङ्कर, देखकर त्रिलोकवासी जीवगणके हृदयमें भयसञ्चार हुआ। सभी आयुधनिचय उद्यत करके चले। तब उनलोगोंके गमनवेगसे शैल-राजि चूर्णविचूर्ण होने लगी। फिर देवी कालरात्रिने आकर विन्ध्याचलवासिनी महा-देवीको दुर्गासुरके आनेका समाचार दिया। उन समरप्रिया तेजोमयी शङ्करीके सहस्र बाहु और प्रति हस्तमें सब अस्त्र सज्जित थे। उनके मुखमण्डलसे ललाटस्थित चन्द्र-कलाका किरणनिकर उद्भासित होता था; उन्हें देखनेसे जान पड़ता था, कि उनके लावण्यरूप सागरसे चञ्चल चन्द्र चन्द्रिका निर्गत होती है। उनके सब शरीरने, अनुपम माणिक्यनिचयको प्रभासे परम सौन्दर्य्य धारण किया था। त्रैलोक्यरूप सुरम्य नगरीके प्रदीप्त दीपशिखा जैसी वह शङ्करी, हरनेत्राग्निदग्ध अनङ्ग देवकी जीवनलतिका और मनोहरसौन्दर्य्यविमोहित जगज्जनके मोहरोगकी महा औषधी स्वरूप हैं। इसके उपरान्त दैत्यवर दुर्गने उन्हें देखते ही विषम शरनिकरसे भिन्न हृदय हो

महाबलपराक्रान्त सेनापतिसे कहा, अहो जम्भ! हे महाजम्भ! हे कुजम्भ! हे विकटानन! हे लम्बपिङ्गाक्ष! हे महिष! हे महोग्र! हे अत्युग्रविग्रह! हे क्रूराक्ष! हे क्रोधन! हे आक्रन्द! हे संक्रन्दन! हे महाभय! हे जितान्तक! हे महाबाहो! हे महावक्त्र! हे महोश्वर! हे दुन्दुभि! हे दुन्दुभिरव! हे महादुन्दुभिनासिक! हे उग्रास्य! हे दीर्घदशन! हे मेघकेश! हे वृकानन! हे सिंहास्य! हे शूकरमुख! हे शिवारव! हे महोत्कट! हे शुष्कतुण्ड! हे प्रचण्डास्य! हे भीमाक्ष! हे क्षुद्रमानस! उलूकनेत्र! कङ्कास्य! काकतुण्ड! करालवाक्! दीर्घग्रीव! महाजङ्घ! हे क्रमेलकशिरोधर! रक्तबिन्दो! जवानेत्र! विद्युज्जिह्व! अग्नितापन! धूम्राक्ष! धूम्रनिश्वास! चण्ड! हे चण्डांशुतापन! और हे महाभीषणादि दैत्यगण! अवहित हो मेरी आज्ञा सुनो। तुम लोगोंमें या अन्यान्य दैत्यगणोंमें जो कुछ बल या छल हो, पकड़कर या धरकर, इस विन्ध्यवासिनीको मेरे पास ले आनेसे, आज निश्चय ही मैं उसे इन्द्रत्व प्रदान करूंगा। आज इस सुन्दरीको देखकर मेरा चित्त अतिशय व्याकुल हुआ है; अतएव इस ललनाके अभावसे जबतक मेरा मन पञ्चशरके शरपीड़नसे विह्वल होता है, तबतक तुम लोग शीघ्रता करो। दैत्यराज दुर्गाकी ऐसी बात सुनकर सब दैत्यगण हाथजोड़कर कहने लगे, महाराज! स्थिर होइये; यह कितना दुष्कर कार्य्य है? हे प्रभो! यह अबला विशेषतः असहाया है। इस अनाथाको ले आनेके लिये इतना महान् प्रयोजन क्या? हे प्रभो! त्रिलोकमें ऐसा कौन है, जो प्रलयाग्निकी ज्वालावलीकी तरह हमलोगोंके, आपके प्रसादसे बलपरिकर होनेपर, वेग सह सके? हे महासुर! आपकी आज्ञा पानेपर अभी सब सुरगणोंके साथ इन्द्रको लाकर अन्तःपुरमें आपके चरणप्रान्तमें स्थापितकर सकते हैं। भूर्लोक भुवर्लोक, स्वर्लोक और महः, जन, तपः और सत्य प्रभृति लोक ही आपके आज्ञाधीन हैं; आपकी आज्ञा पानेपर, हमलोगोंके असाध्य कुछ भी नहीं है। अधिक क्या, वैकुण्ठेश्वर कमलाकान्त भी सदा आपकी आज्ञाका प्रतिपालन करते हैं; वह सदा आनन्दसे साथ सुरम्य रत्नराजि आपको भेंट देते हैं और हमलोग इच्छापूर्व्वक कैलासनाथ शङ्करको विषभोजी, निर्व्विष भुजङ्गभक्षविभूषण और चर्म्मपरिधान जानकर परित्याग करते हैं। उन्होंने हमलोगोंके भयसे ही अपनी पत्नीको अर्द्धाङ्गमें आवृत किया है। उनके अधिकारमें एक वृद्ध वृषभके सिवा दूसरा चतुष्पद नहीं है; वह भी दूसरेके पास जीवित नहीं रह सकता और उनके नगरमें जो सब प्रमथगण वास करते हैं, वह सभी श्मशानवासी

जटाधारी, भस्मभूषण और कौपीन मात्र उनका परिधान है ; सुतरां हे प्रभो ! हम परम दरिद्रोंके लिये और क्या करें ? समुद्र रत्नाकर नित्य आपके पास रत्न-राशि प्रेरण करते हैं। दरिद्र नागगण प्रतिदिन सायंकाल फणारूप दीपालोकसे प्रति गृह उद्भासित करते हैं। हे प्रभो ! आपके प्रसादसे हमलोगोंके घरमें भी कामधुक् कल्पवृक्ष और असंख्य चिन्तामणि विराज रही हैं ; अग्निदेव स्वयं व्यजन-रूपसे आपकी सेवा करते हैं। वरुण नित्य सुनिर्मल जल दान करते हैं और स्वयं अग्नि आपका वस्त्र धोते और चन्द्र छत्रधारणकार्य्य करते हैं, स्वयं दिवाकर नित्य आपकी क्रीड़ावापीके अम्बुज-निचय विकाशित करते हैं। अधिक क्या, सुरासुर प्रभृति समस्त प्राणी ही आपके आश्रित हैं ; मर्त्त्य अमर्त्त्यमें ऐसा कोई नहीं है, जो आपकी प्रसन्नताकी अपेक्षा न करे। हे राजन् ! अब हमलोगोंका विक्रम देखिये, हमलोग अभी इस ललनाको बलपूर्वक धर लाते हैं। उन लोगोंने ऐसा कहकर, प्रलयकालमें जगत्-प्लावनार्थ सप्तसागरकी तरह, सबने ही युगपत् भीषण मूर्त्ति धारण की। तब चारोओरसे संग्रामसूचक तूर्य्यध्वनि हुई और उसके सुननेसे कातर, अकातर, सबका ही शरीर कण्टकित हुआ। सब देवगण भीत हुए और वसुन्धरा कांपने लगीं ; सप्तसागर संक्षुब्ध हुए और गगनमण्डलसे अविरत तारकाराजि निपतित होने लगी। उस तूर्य्यध्वनिसे समुदय आकाश और भूमण्डल परिव्याप्त हुआ। इसके उपरान्त देवी भगवतीने अपने शरीरसे शत शत, सहस्र सहस्र शक्ति प्रादुर्भूत की। फिर उस महाबलपराक्रान्त दानवगणके भीषण सैन्यसागरमें प्रत्येक वह शक्तिगणसे अवरुद्ध हुईं, तब उस संग्रामक्षेत्रमें वह लोग भगवतीको लक्ष्य करके जितने अस्त्रशस्त्र निक्षेप करने लगे, उन सबको शक्तिगणने तृणकी तरह विच्छिन्न करना आरम्भ किया। फिर जम्भ प्रभृति दानवगण परमक्रोधान्वित हो, जलदगण जैसे जलधारा वर्षण करते हैं, उसी तरह एकबार सबने ही देवीके प्रति असि, चक्र, भुशुण्डी, गदा, मुद्गर, तोमर, भिन्दिपाल, परिघ, कुन्त, अर्द्धचन्द्र, क्षुरप्र, नाराच, शिलामुख महाभल्ल, परशु और हल वर्षण करने प्रवृत्त हुए। तब विन्ध्यवासिनी महामाया महेश्वरीने भीषण कोदण्ड ग्रहणकर वायव्यास्त्र द्वारा अनायास ही दानवगण प्रेरित उस अस्त्रजालको विदूरित किया। फिर महासुर दुर्गने सैन्यको निरायुध देख देवी-उरमें एक जाज्वल्यमान शक्ति निक्षेप की, भगवती महेश्वरीने भी उस शक्तिको महावेगसे आती देख अर्द्धपथमें ही शरासन-निर्म्मुक्त शरजाल द्वारा चूर्ण कर डाला। फिर दुर्गासुरने अपनी शक्तिको भग्न होती

देख दैत्यगणका हर्षप्रद एक चक्र निक्षेप किया। वह भी देवीके शरनिकरसे बालुकावत् असंख्य खण्डमें विभक्त हुआ। हे मुने! फिर दानववर दुर्गने इन्द्रधनुःसदृश शरासन ग्रहणकर देवीका कक्षःस्थल विद्ध करनेपर उद्यत हो ऐसा भीषण एक शर निक्षेप किया, कि वह देवीके महावेग-सम्पन्न बाणनिचय द्वारा निवारित होनेपर भी उनके सामने उपस्थित हुआ। तब भगवतीने द्वितीय यमदण्डोपम उस द्रुत-गामी शरको दण्डाघातसे निवारण किया। इसके उपरान्त दुर्द्दम दानवाधिपति दुर्गने उस शरको विमुख देखकर क्रुद्ध हो प्रलयानलसमप्रभ एक शूल ग्रहणकर देवीको लक्ष्य करते हुए महावेगसे निक्षेप किया। देवी चण्डिकाने भी अपने शूलद्वारा उसको पास आते आते दैत्यगणकी जयाशाके साथ छेदन कर डाला। फिर महाबल दैत्येन्द्रने अपना शूल देवीके शूलाघातसे विच्छिन्न हुआ देख गदा ग्रहणकर सहसा धावित हो देवीका बाहुमूल आहत किया, वह गदा देवीके गिरीन्द्रशिखरा-कृति भुजसंसर्गसे शतसहस्रधा वि-दीर्ण हुई। इसके उपरान्त दैत्यवर दुर्ग देवीके वामपादतलताड़नसे नितान्त व्याकुलहृदय हो धरातलमें निपतित हो फिर उठकर वाताहत दीपवत् सहसा अन्तर्द्धान हुआ। तबतक शक्तिगण जगज्जननी द्वारा प्रेरित हो, प्रलयकालकी मृत्युसैन्यकी तरह दानव-सैन्यमें विचरण करने लगीं।

एकसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितम अध्याय।

दुर्गाविजय।

भगवानने कहा, हे पार्वतीहृदयानन्द शर्व्वानन्दन स्कन्द! वह कौन कौन शक्तियाँ? उनलोगोंका नाम मुझसे प्रकाश करिये। स्कन्दने कहा, हे मुनिवर कुम्भयोने! महेश्वरीकी शरीर-सम्भूता उन सब महाशक्तियोंका नाम कहता हूं, सुनो। त्रैलोक्यविजया, तारा, क्षमा, त्रैलोक्यसुन्दरी, त्रिपुरा, त्रिजगन्माता, भीमा, त्रिपुरभैरवी, कामाख्या, कमलाक्षी धृति, त्रिपुरतापिनी, जया, जयन्ती, विजया, जलेशी, अपराजिता, शङ्खिनी, गजवक्त्रा, महिषघ्नी, रणप्रिया, भूतानन्दा, कोटराक्षी, विद्युज्जिह्वा, शिवारवा, त्रिनेत्रा, त्रिवक्त्रा, त्रिपदा, सर्व्वमङ्गला, हुङ्कारहेति, तालेशी, सर्पास्या, सर्व्वसुन्दरी, सिद्धि, बुद्धि, स्वधा, स्वाहा, महानिद्रा, शवासना, पाशपाणि, खरमुखी, वज्रतारा, षड़ानना, मयूरवदना, काकी, शुकी, भासी, गरुत्मती, पद्मावती, पद्मकेशा, पद्मास्या, पद्मवासिनी, अक्षरा, अक्षरानन्ता, प्रणवेशी, स्वरात्मिका, त्रिवर्गा, वर्गरहिता, अजपा, जपहारिणी, जपसिद्धि, तपःसिद्धि, योगसिद्धि, परामृता, मैत्रीकृत,

मित्रनेत्रा, रक्षोघ्नी, दैत्यतापिनी, स्तम्भिनी, मोहिनी, माया, महामाया, बलोत्कटा, उच्चाटनी, महोल्कास्या, दनुजेन्द्रक्षयङ्करी, क्षेमङ्करी, सिद्धिकरी, छिन्नमस्ता, शुभानना, शाकम्भरी, मोक्षलक्ष्मी, त्रिवर्गफलदायिनी, वार्त्ताली, जृम्भणी, क्लिन्ना, अश्वारूढ़ा, सुरेश्वरी और ज्वालामुखी प्रभृति महाबलसम्पन्ना उन नौकोटि महाशक्तिने महाबलपराक्रान्त दानवसैन्यागणका इस तरह संहार किया जैसे प्रलयकालमें अग्निशिखा समस्त जगत् विनष्ट करती है। तब दानववर दुर्गके मेघमालाके अन्तरालसे आंधीके साथ भयङ्कर करकावृष्टि आरम्भ करनेपर, देवी भगवतीने शोषणास्त्र सन्धान करती हुई क्षणकालमें उसे निवारण किया। तब मालूम हुआ, कि नपुंसकके पास योषिद्गणके रमणाभिलाषकी तरह देवीके पास दैत्यवरका करकावर्षण भी विफल हुआ। फिर दैत्यराजने क्रोधाविष्ट हो कर द्वारा करम[illegible]कर एक शैलशिखर उखाड़ गगनाङ्गनसे निक्षेप किया; महेश्वरीने उस सुविस्तीर्ण शैलशृङ्गको पतित होता देख वज्रास्त्र द्वारा कोटि कोटि खण्डमें उसे विभिन्न किया। इसके उपरान्त वह असुरवर, भयङ्कर मातङ्गरूप धारणकर कुण्डलविराजित मस्तक आन्दोलित करता हुआ देवी-उद्देशसे समरक्षेत्रमें शीघ्र धावमान हुआ। तब भगवतीने उस शैलोपम मातङ्गको आते देख अविलम्ब पाश द्वारा बन्धनकर खड्गाघातसे उसका शुण्ड छेदन किया और वह करिवर घोरतर चीत्कार करने लगा। इसका कोई फलोदय न देखकर वह दैत्य भीषण महिषाकार धारण करता हुआ समुदय वसुन्धराको खुराघातसे कम्पित और शैलनिचयको शृङ्गताड़नसे पातित करने लगा। उस समय सब महान् वृक्ष उसकी निश्वासवायुचालनसे धराशायी होने लगे और सप्तसागर उद्वेल हो उठा। अधिक क्या, युगान्तकालीन व्याताकी तरह उस दानववरने भयङ्कर महिषरूपमें समुदय त्रिलोकको संक्षुब्ध किया था और उसके भयसे समस्त ब्रह्माण्डवासी अकस्मात व्याकुल हुए थे। तब भगवतीने जगत्का ऐसा भाव देखकर परम क्रोधान्विता हो उसपर त्रिशूलाघात किया, उससे वह उद्भ्रान्त हो धरातलमें पतित हुआ और तत्क्षणात् उठकर महिषरूप परित्यागकर उसने सहसा सहस्रबाहु एक योद्धृवेश अवलम्बन किया। उस समय वह दुर्गासुर समराङ्गणमें नितान्त दुर्दम्य प्रतीयमान हुआ। फिर महाबल पराक्रान्त शत सहस्र आयुधधारी कालान्तकोपम उस दुर्गदानवने शीघ्र संग्रामतलस्था भगवती जगदम्बिकाका कर ग्रहणकर गगन मार्गमें उठा वहांसे उन्हें निक्षेप करता हुआ क्षणकालमें शरजालसे समाच्छन्न किया। तब वह गगनमध्यवर्त्तिनी देवी उसके शरजालसे

समाच्छन्न हो, महामेघमालावृता सौदामिनीकी तरह, परम शोभा पाने लगीं। फिर उन्होंने अपने शरनिकरसे दैत्यवरका शरजाल छिन्न करकर भीषण शरसे उसे विद्ध किया। उस समय वह दुर्गासुर, देवीके महाशरसे मर्म्माहत हो विह्वलचित्तसे नेत्रद्वय घुमाता हुआ भूतलमें निपतित हुआ। उसके भयङ्कर रुधिरधाराबर्षणसे रुधिरनदी प्रवाहित होने लगी। भीम-पराक्रम दुर्गासुरके इस तरह निहत होनेपर, सब देवदुन्दुभि निनादित होने लगीं; चन्द्र, सूर्य्य और अग्निदेवने अपना अपना तेजः पाया; त्रिलोकवासी जीवगण प्रहृष्ट हुए और अमरगणने महर्षिगणके साथ पुष्पवर्षण करते हुए वहां उपस्थित हो परम स्तुतिवाक्यसे महेश्वरीका स्तव करना आरम्भ किया। देवगणने कहा, हे देवी जगद्धात्री! हे महेश्वरमहाशक्ते! आप जगन्मयमहारण्यमें दावस्वरूप दुःखनिचयकी कुठारस्वरूपिणी हैं; आपको नमस्कार है। हे त्रैलोक्यव्यापिनी शिवे! हे शङ्खचक्रगदाधरे! हे विष्णुस्वरूपिणि! आपके भुजनिचय दुष्टदलनार्थ कोदण्डाकर्षणसे निरन्तर व्यग्र रहते हैं; हे सर्व्वसृष्टिविधायिनि! हे चतुराननरूपिणि! हे हंसयाने! आप ही वेदवाक्यकी जन्मभूमिस्वरूप हैं; अतएव आपको प्रणाम करते हैं। आप ही इन्द्रशक्ति हैं, आप ही कुवेरशक्ति हैं, आप ही वायुशक्ति, आप ही वरुणशक्ति, आप ही अन्तकशक्ति, आप ही शिवशक्ति, आप ही राक्षसशक्ति, और आप ही पावकशक्ति हैं, आप ही शशाङ्ककौमुदी आप ही सूर्य्यशक्ति, अधिक क्या परमेश्वरी आप ही सर्व्वदेवमयी शक्ति हैं। आप ही गौरी, सावित्री, गायत्री सरस्वती, प्रकृति, मति और आप ही अहङ्कृतिस्वरूपा हैं। हे अम्बिके! आप ही चेतःस्वरूपिणी, आप ही सर्व्वेन्द्रियरूपिणी आप ही पञ्चतन्मात्रस्वरूपा और आप ही महाभूतात्मिका हैं। हे देवि! ब्रह्माण्डकन्त्री आप ही इच्छा, अनुग्रह, शब्दादिस्वरूपा और ब्रह्माण्डमध्यवर्त्ती निखिल वस्तु आपसे भिन्न नहीं है। हे महादेवी! प्रणवात्मिका आप ही पर, परापरा और निखिल परापरमें परमा हैं। आप ही सर्व्वमन्त्रमयी हैं, ब्रह्मादि समुदय देवगण आपसे उत्पन्न हुए हैं। हे ईशानि! हे सर्व्वव्यापिनि! आप अरूपा होकर भी सर्व्वरूपस्वरूपिणी हैं। हे अमृतस्वरूपिणि महामाये! आप ही चित्शक्ति, आप ही स्वाहा और आप ही स्वधा हैं! परमात्मस्वरूपिणी आप ही वषट् और वौषट् स्वरूपा हैं। हे चतुर्व्वर्गफलदायिनि! आप ही चतुर्व्वर्गस्वरूपा हैं, हे जगत्कन्त्रि! आपसे ही सब विश्व समुद्भूत हो आपमें ही अवस्थित है। स्थूल और सूक्ष्मरूपमें जो कुछ वस्तु विद्यमान है, उन सबमें आप ही शक्तिरूपसे विराज रही हैं, कहीं

कोई वस्तु आपसे पृथक् नहीं है। हे मातः। जिस दुर्गासुरने मायाबलसे बहुविध दानवसैन्यजाल विस्तार किया था, आपने ही उस महान् असुरेन्द्रको निहतकर हमलोगोंको परित्राण किया; अतएव हे देवि! प्रणतपालयित्रि! हमलोग आपके सिवा और किसके शरणापन्न होंगे? हे परमेश्वरि! आप जिनके प्रति कृपाकटाक्षपात करती हैं, इस जगत्‌में वही धन, धान्य, समृद्धि, पुत्र, पौत्र और मनोहर भार्य्यालाभमें समर्थ हैं और उनकी ही निर्म्मल चन्द्रमासदृश शुभ्र यशोराशि विश्वमण्डलमें परिव्याप्त होती है। हे त्रिपुरारिपत्नि! जो आपको प्रणाम और आपका नाम स्मरण करते हैं, उन सब भक्तोंको कभी किसी तरहका क्लेश या विपत्ति उपस्थित नहीं होती और उन्हें फिर गर्भ-यन्त्रणा भोगना नहीं पड़ती। हे भवानि! यह सबको ही विदित है, कि दुष्ट व्यक्ति भी आपके नेत्रपथमें पतित होनेपर कभी अधोगति नहीं पाते; किन्तु हमलोगोंको यही आश्चर्य मालूम होता है, कि दुर्गासुर समराङ्गणमें आपको अमृतमय दृष्टिलाभसे भी मृत्युके वशतापन्न हुआ। हे देवि! इस संग्रामक्षेत्रमें दानवगण, आपके अस्त्ररूप अनलसे शलभकी तरह जीवन विसर्जनकर सूर्य्यतुल्य तेजोकलेवर धारण करते हुए स्वर्गधाम जाते हैं; अतएव यथार्थ ही साधुव्यक्तिगण दुष्टजनके प्रति भी असद्‌बुद्धि न करके प्रणयभावसे साधुके प्रति जैसा हो, वैसे ही सत्पथका उपदेश करते हैं। अतएव हे मृडानि! हमलोग आपको प्रणाम करते हैं। आप ही सदा हमलोगोंके पूर्व्व रक्षा करिये और हे भवानि! दक्षिण ओर अनुक्षण विपद्‌से परित्राण करिये। हे त्रिपुरारिपत्नि! हे महेश्वरि! हमलोग आपके भक्त हैं, हमारे उत्तर और पश्चिम रक्षा करिये। हे ब्रह्माणि! सदा ऊर्द्धमें और वैष्णवि! सदा अधोमें हमलोगोंका प्रतिपालन करिये। हे देवि! आप मृत्युञ्जयारूपसे ईशानमें, विनयनारूपसे अग्निकोणमें, त्रिपुरारूपसे नैऋतमें और विश्वशक्तिरूपसे वायुकोणमें हमारी रक्षा करिये। हे अमले! आपका त्रिशूलास्त्र हमलोगोंके मस्तकका रक्षाविधान करे। हे देवि! शशिकलाधारिणी ललाटदेश, उमा भ्रूयुगल, त्रिलोचनवधू नेत्रद्वय, गिरिजा नासिका, जया ओष्ठ, विजया अधर, श्रुतिरवा श्रुतियुग्म, श्री दन्तपंक्ति, चण्डिका गण्डयुगल, वाणी रसना, जयमङ्गला चिबुक, कात्यायनी समुदय वदनमण्डल, नीलकण्ठी कण्ठप्रदेश, भूदारशक्ति ग्रीवा, कूर्म्मशक्ति निरन्तर अंसदेश, इन्द्रशक्ति भुजदन्त, पद्मा पाणितल, कमलजा हस्ताङ्गुली, विरजा नखश्रेणी, तमोनाशिनी सूर्य्यमण्डलवासिनीशक्ति कक्षद्वय, स्थलचरी उरःस्थल, धरित्री हृदय, चण्डाक्ष-

रत्नी कुच्चिद्वय, जगदीश्वरी उदर, नभोगतिदेवी नाभिमण्डल और अजा देवी हमलोगोंके पृष्ठदेशकी सदा रचा करें। हे जगदीश्वरी! विकटा देवी हमलोगोंकी कटिद्वय, परमा नितम्बदेश, गुह्यारणि गुह्यदेश, अपायहन्त्री अपानदेश, विपुला देवी उरुयुगल, ललिता जानुद्वय, जया जङ्घायुग्म, कठोरतरा गुल्फद्वय, रसातलचरा पादयुगल, उग्रादेवी पादाङ्गुलिनिचय, चान्द्रीदेवी नखराजि और तलवासिनीदेवी पादतलद्वय रचा करें। लक्ष्मीदेवी सदा हमलोगोंके घरमें चेत्रकरी चेत्रमें, प्रियकरी पुत्रगणमें, सनातनी आयुःमें, महादेवी यशमें, धनुर्द्धरीदेवी धर्म्ममें, कुलदेवी कुलमें, सद्गतिप्रदा सद्गतिमें और देवी सर्व्वाणि रणमें, राजकुलमें, द्यूतमें, प्रत्युत्सङ्कटमें, गृहमें, वनमें या जलादि सर्व्वत्र सर्व्वतोभावसे हमलोगोंकी रचा करें। इन्द्रादि समुदय देवगण महर्षि,गन्धर्व्व और चारणगणोंके साथ उन जगद्धात्री महेश्वरीकी ऐसा स्तुतिवाद कर बारबार उन्हें प्रणाम करने लगे। फिर जगन्माता भगवतीने परम परितुष्टा हो सुरगणसे कहा, हे सुरगण! तुमलोग सब पहलेकी तरह अपने अपने अधिकारका पालन करो; मैं तुमलोगोंके स्तुतिवादसे परम प्रीता हो दूसरा वर प्रदान करती हूं, सुनो। जो मनुष्य शुभभावसे भक्तिपूर्व्वक तुम्हारे कृत इस स्तुतिवाद द्वारा मेरा स्तव करेंगे, मैं पद पदपर उनके समुदय विपद निवारण करूंगी। वज्रपञ्जर नामक यह स्तोत्रकवच परिधान करनेसे मनुष्योंको कभी किसी तरहका कोई भय नहीं रहेगा। संग्रामस्थलमें दुर्गासुर दैत्यके संहारहेतु आज प्रभृति जगत्में मेरा दूसरा नाम "दुर्गा" प्रसिद्ध होगा। जो दुर्गाके शरणापन्न होंगे, उन्हें कभी दुर्गति भोगना न पड़ेगी। वज्रपञ्जर नामक यह पवित्र दुर्गास्तुति कवचरूपसे धारण करनेपर यमकी आशङ्का भी न रहेगी। इस शुभदायिनी स्तुतिके सुननेसे भूत, प्रेत, पिशाच, शाकिनी, डाकिनी, स्फुलिङ्ग, क्रूर राचस या विषसर्पगण और अग्निभय, दस्यु कङ्काल, ग्रह, बालग्रह और वातपित्तादिजनित सर्व्वविषमज्वर दूर भागेंगे। दुर्गाका महिमाप्रकाशक वज्रपञ्जर नामक स्तोत्रद्वारा परिरक्षित व्यक्तिको वज्रसे भी भय नहीं रहता। जो व्यक्ति अष्टजप्त इस स्तोत्र द्वारा अभिमन्त्रित जल पान करेंगे, उन्हें कभी उदरपीड़ा या स्त्रियोंको गर्भपीड़ा भी न होगी और इस स्तोत्रशोधित जलपानसे बालकोंका सब प्रकारका उपसर्ग शान्ति होगा। इस जगत्में जहां यह स्तोत्र विद्यमान रहेगा, वहां यह सब शक्ति मेरे साथ अवस्थित रह मेरी आज्ञासे मेरे भक्तगणकी सदा रचा करेंगी। देवी महेश्वरीके देवगणको ऐसा वरदान दे अन्तर्हिता होनेपर,

वह लोग भी परमानन्दसे अपने अपने स्थान गये। स्कन्दने कहा, हे मुने! उन देवीका इस तरह दुर्गा नाम हुआ। अब काशीधाममें जिस तरह उनकी पूजा करना चाहिये, वह कहता हूं, सुनो। अष्टमी या चतुर्दशीको विशेषतः मङ्गलवारको उन दुर्गार्त्तिहारिणीकी सदा अर्च्चना करना कर्त्तव्य है। नवरात्रमें नित्य यत्नके साथ उनकी अर्च्चना करनेसे सब विघ्न निवारित होते और मतपति लाभ होता है। जो व्यक्ति इस काशीधाममें उत्कृष्टतर विविध उपचारसे उनकी अर्च्चनाकर महाबलि निवेदन करते हैं, देवी-दुर्गा निःसन्देह उन्हें सर्व्वाभीष्ट दान करती हैं। कुशलप्रार्थी मनुष्य बन्धुबान्धवके साथ प्रति वर्ष शरत्कालमें नवरात्रको यत्नके साथ उनका उत्सव करें। जो व्यक्ति वार्षिक शारदीय उत्सव नहीं करते, उनके पद पदपर सहस्र सहस्र विघ्न उपस्थित होते हैं। मनुष्य दुर्गाकुण्डमें स्नानकर सर्व्वदुर्गतिहारिणी देवीको इस तरह यथाविधि नवरात्र अर्च्चना करनेसे नौजन्मार्ज्जित पातसे परित्राण पाते हैं। भगवती दुर्गादेवी, कालरात्रि प्रभृति शक्तिगणके साथ सदा काशीधामकी रक्षा करती हैं; इन शक्तियोंकी पूजा भी यत्नके साथ करना मनुष्योंका कर्त्तव्य है। इनके सिवा और नो शक्ति, सहस्र सहस्र उपसर्गसे सदा काशीधामकी रक्षा करती हैं। उक्त शतनेत्रा, सहस्रास्य, अयुतभुजा, अश्वारूढ़ा, गजास्या, त्वरिता, शववाहिनी, विश्वा और सौभाग्य गौरी नाम्नी नौ शक्ति हैं, वह यथाक्रमसे पूर्व्वादि दिक्की अधिष्ठात्री देवता हैं। काशीक्षेत्रकी रक्षाकारी इन सब देवियोंकी यत्नपूर्व्वक पूजा करना चाहिये। इसी तरह रुरु, चण्ड, असिताङ्ग, कपाली, क्रोधन, उन्मत्त, संहार और भीषण नामक अष्टभैरव आठों ओर अवस्थित रह निर्व्वाणलक्ष्मीके निकेतनस्वरूप काशीक्षेत्रकी सदा रक्षा करते हैं। विद्युज्जिह्व, ललजिह्व, क्रूरास्य, क्रूरलोचन उग्र, विकटदंष्ट्र, रक्तास्य, रक्तनासिक, जृम्भक, जृम्भणमुख, ज्वालानेत्र, वृकोदर, गर्त्तनेत्र, महानेत्र, तुच्छनेत्र, अन्त्रमण्डन, ज्वलत्केश, अङ्कुशिराः, खर्व्वग्रीव, महाहनु, महानाश, लम्बकर्ण, कर्णप्रावरण और अनस प्रभृति महाभीमकाय चतुःषष्टिवेताल, तादृशाकारसम्पन्न कोटि कोटि भूतगणसे वेष्टित हो चारो ओर दुराचारियोंको त्रासित करते हुए सदा काशीक्षेत्रकी रक्षा करते हैं। उन सब लोगोंके गलदेशमें मुण्डमाला और हाथमें खर्पर और छुरिका प्रभृति नानाविध अस्त्रशस्त्र देदीप्यमान हैं। सबका ही मुखमण्डल रक्तवर्ण, भीषणदंष्ट्रा और केशपाश लम्बमान है। नानारूपधारी महाभुज यह वेतालगण सदा रुधिर और मद्यपानमें उन्मत्त और अति दुर्वृत्त और रुधिरप्रिय हैं। हे मुनिवर

कुम्भयोने! मैंने पहले जो त्रैलोक्यविजया आदिसे ज्वालामुखीपर्य्यन्त शक्तिगणकी बात उल्लेख की वह सभी अस्त्र-शस्त्र उद्यतकर काशीकी चारों ओर रक्षा करती हैं; महाविघ्न शान्तिके लिये यत्नके साथ इन सर्व्वसम्पत्तिकी निदानभूत शक्तियोंकी काशीधाममें सदा पूजा करना चाहिये और विद्युज्जिह्व प्रभृति जिन भीमरूपी वेतालगणका उल्लेख किया, वह काशीधाममें अर्च्चित होनेपर अत्युग्र विघ्नराशि भी हरण करते हैं। हे मुने! नानाभूषण-विभूषित शतकोटि भूतगण भी विविध आयुध ग्रहणकर पद पदपर निर्व्वाणलक्ष्मीनिलय काशीधामकी रक्षा करते हैं। जो मनुष्य निर्व्वाणमोक्षका अभिलाष करते हों, उन्हें काशीमें इन सब देवताओंकी पूजा करना चाहिये। मनुष्य दुर्गाविजय नामक नाना शक्तिगणका महिमापूर्ण पवित्र यह अध्याय सुननेसे शीघ्र विपदसे उत्तीर्ण होते हैं। जो मनुष्य पूर्व्वोक्त भैरव और वेतालगणका नाम सुनते हैं, वह किसी तरहके विघ्नसे अभिभूत नहीं होते। उल्लिखित भूतगणके चक्षुर्विषय न होनेपर भी जो यह उपाख्यान पढ़ते हैं, वह लोग इसके श्रोतवर्गके सहित उनकी रक्षा करते हैं। अतएव काशीक्षेत्रमें जिनकी अचला भक्ति है, उन्हें सर्व्वप्रयत्नसे यह महाविघ्न निवारण उपाख्यान सुनना विधेय है। पत्रादि लिखित यह उपाख्यान जिनके घरमें यत्नके साथ रखा है, पूर्व्वोक्त देवगागण उनका शत सहस्र विपद्द निवारण करती हैं। काशीप्रेमिक मनुष्योंका परम समादरसे वज्रपञ्जर नामक यह उपाख्यान सुनना कर्त्तव्य है।

द्विसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥७२॥

त्रिसप्ततितम अध्याय।

ओङ्कारेश्वरमाहात्म्यवर्णन।

अगस्त्यने कहा, हे षडानन! भगवान देवदेवने जगदम्बाके साथ त्रिलोचन लिङ्गके समासन्न हो फिर क्या किया, यह अविलम्ब मुझसे कहिये। स्कन्दने कहा, हे मुने कुम्भयोने! तुमने जो पूछा वह कहता हूं, सुनो! सर्व्वसिद्धिदायक जिस विरजःसंज्ञक पीठकी बात कह चुका हूं, उस पीठके दर्शनसे मनुष्य रजोगुणशून्य होता है। वाराणसीमें उक्त विरजःसंज्ञक पीठमें त्रिलोचन महालिङ्ग और स्वर्गदीपशिलासे प्रसिद्ध पिलुपिलातीर्थ विराजमान है। यह तीर्थ सर्व्वतीर्थमय कहा जाता है। हे मुने। त्रिविष्टपके (भुवनके) अन्तर्व्वर्त्ती देव, ऋषि, मनुष्य और नाग—नदी, शैल, काननके साथ वहां विराजित हैं, इसलिये उक्त तीर्थ और त्रिलोचन लिङ्ग-त्रिविष्टप नामसे विख्यात और सर्व्वापेक्षा प्रधान हुए। हे मुने!

भगवान् पिनाकपाणिने जगज्जननी देवीके सामने त्रिविष्टप लिङ्गकी जैसी महिमा कही थी, वह कहता हूं, सुनो। देवीने कहा, हे सर्व्वदर्शिन्! सर्व्वजनक! सर्व्वग! सर्व्वप्रद! सर्व्व! जगत्पते! देवदेव! मुझे कुछ थोड़ा पूछना है, वह कहिये। यह काशीक्षेत्र—कर्म्मबीजका महौषध और मोक्षलक्ष्मीधाम—आपको जैसा प्रिय है, उससे अधिक मेरा प्रीतिप्रद है। जिसकी शूलाग्रके सामने त्रिलोकी भी तृणवत् लघु जान पड़ती हैं, उस क्षेत्रके सब माहात्म्यसे कौन अवगत हो सकता है? हे शङ्कर! ईश! इस क्षेत्रस्थित क्या अनादि और क्या स्थापित, सभी शिवलिङ्ग निर्व्वाण प्रदान करते हैं यह सब है सही, तथापि कौन अनादिसिद्ध लिङ्ग हैं, वह विशेष प्रकारसे कहिये। जिनमें आप शक्तिके साथ प्रलय-कालमें भी आविर्भूत होंगे, जिन लिङ्गके रहनेसे काशी मुक्तिपुरी नामसे विख्यात हुई, जिनके स्मरणसे पापक्षय और दर्शन, स्पर्शनसे स्वर्ग अपवर्ग मिलता और जिनकी एकबार अर्चना करनेसे काशीस्थ सब लिङ्गकी पूजा सम्पन्न होती है, वह लिङ्ग कौन हैं? हे प्रभो! करुणामृतसागर यह सब अनुग्रहपूर्व्वक कहिये। हे शम्भो! मैं आपके चरणोंमें प्रणत हूं। हे विन्ध्यरिपो! मुनिसत्तम महेश्वर, देवीकी ऐसा सम्भाषित सुनकर, जिनका नाम सुननेसे पापराशि क्षय और पुण्यसञ्चय होता है, काशीस्थ उन निर्व्वाणकारण महालिङ्गकी बात कहने लगे। देवदेवने कहा, हे देवि! क्षेत्रस्थित मुक्तिकारण परम गुह्य बातें सुनो; इसे विरञ्चि नारायण प्रभृति कोई देवगण नहीं जानते। हे पार्व्वति! इस आनन्दकाननमें स्थूल सूक्ष्म, नानारत्नमय, धातुमय और पाषाणमय अनादि और देवर्षि स्थापित असंख्य लिङ्ग विराज रहे हैं। सिद्धि, चारण गन्धर्व्व, यक्ष, राक्षससेवित और असुर, नाग, मनुष्य, दानव, अप्सरा, दिग्गज, गिरि, तीर्थ, ऋक्ष, वान, किन्नर, और पक्षी प्रभृति जीवप्रतिष्ठित अपने अपने नामाङ्कित मुक्तिप्रद अदृश्य, दृश्य, दुरवस्थान्वित और कालक्रमसे भग्न कितने ही लिङ्ग हैं, वह सभी पूजनीय हैं। अयि प्रिये! सुन्दरि! एकदिन मैंने इस रूपमें शत परार्द्धसंख्याकी गणना की थी और गङ्गासलिलमें षष्टिकोटिसंख्यक जो सिद्धलिङ्ग हैं, वह कलिकालमें अदृश्य हुए हैं। अयि प्रिये! मेरे गणनादिवसके उपरान्त भक्तगणने जो सब लिङ्ग स्थापन किये हैं, उनकी गणना नहीं। अयि सुन्दरि! तुमने जो इस समय सब लिङ्गकी बातें पूछीं और जिनसे यह क्षेत्र सर्व्वोत्कृष्ट हुआ है, उन मुक्तिदायक लिङ्गकी बात कहता हूं, सुनो। अयि गिरिराजनन्दिनि! कलियुगमें वह अति गुह्य रहेंगे, किन्तु उनलोगोंका स्थानमाहात्म्य कभी न जायगा। अयि शुभानने! जो

कलिकालमें पुष्ट, दुष्ट नास्तिक और शठ हैं; जिन लिङ्गका नाम सुननेसे पाप-क्षीण और पुण्यसञ्चित होता है, वह उनके नामकी गन्धतक नहीं पावेंगे। उनमेंसे प्रथम ओङ्कारेश्वर, द्वितीय त्रिलोचननाथ, तृतीय महादेव, चतुर्थ कृत्तिवासा, पञ्चम रत्नेश्वर, षष्ठ, चन्द्रेश्वर, सप्तम केदारेश्वर, अष्टम धर्म्मेश्वर, नवम वीरेश्वर, दशम कामेश्वर, एकादश विश्वकर्म्मेश्वर, द्वादश मणिकर्णीश्वर, त्रयोदश अविमुक्तेश्वर और चतुर्द्दश विश्वेश्वर नामक महालिङ्ग समझना। अयि सुन्दरि! यह चतुर्द्दशलिङ्ग मोक्षोंके मूलीभूत कारण हैं, इनके समवायसे काशीको मुक्तिक्षेत्र कहते हैं। यही क्षेत्रके परम अधिष्ठात्री देवता और आराधनासे मनुष्यगणको कैवल्यपद प्रदान करते हैं। अयि प्रिये! आनन्दकाननमें यह चतुर्द्दशलिङ्ग मुक्तिके हेतुभूत और मनुष्यगणके पूज्य कहे जाते हैं। हे कुम्भसम्भव! प्रतिमासमें शुभ प्रतिपद् तिथिसे इस महालिङ्गका यत्नके साथ उत्सव करना चाहिये; नहीं तो इनकी आराधना न करनेसे यह निश्चय है, कि काशीमें कोई मुक्ति पानेमें समर्थ न होगा, अतएव हे मुने! काशीफलप्रार्थी मनुष्यमात्रको परमभक्तिके साथ इन सब लिङ्गकी अर्चना अन्तःकरणसे करना उचित है। अगस्त्यने कहा, हे षड़ानन! देवदेवकथित केवल यह सब महालिङ्ग ही निर्व्वाणके कारण हैं और लिङ्ग क्या नहीं हैं? यदि हैं, तो कहिये। स्कन्दने कहा, हे सुव्रत। इस क्षेत्रमें अपरापर महालिङ्ग वर्त्तमान हैं, किन्तु वह कलिप्रभावसे लुप्तप्रभाव होंगे। जिनकी ईश्वरमें सदा भक्ति और जो काशीतत्त्वज्ञ हैं, वह व्यक्ति ही, जिनका नामोच्चारण करनेसे कलिकल्मष क्षय होता है, वह इनसब लिङ्गको जान सकेंगे; और कोई नहीं जानेंगे। (१) अमृतेश्वर, (२) तारकेश्वर (३) ज्ञानेश्वर, (४) करुणेश्वर, (५) मोक्ष द्वारेश्वर, (६) स्वर्गद्वारेश्वर, (७) ब्रह्मेश्वर, (८) लाङ्गलीश्वर, (९) वृद्धकालेश्वर, (१०) वृषेश्वर, (११) चण्डीश्वर, (१२) नन्दिकेश्वर, (१३) महेश्वर और (१४) ज्योतिरूपेश्वर हैं; यह चतुर्द्दशलिङ्ग काशीमें विख्यात हैं। अयि सुन्दरि! आनन्दकाननमें यह चतुर्द्दश लिङ्ग भी महालिङ्ग और मुक्तिके निदान हैं। कलिकालमें पापबुद्धि मनुष्योंसे कभी यह बात न कहना। जो इन सबकी आराधना करेंगे, उन्हें कभी संसारपथका पथिक बनना न पड़ेगा। अयि देवि! यह अनुपम काशीरत्नभाण्डार, ऐसे वैसे व्यक्तियोंपर प्रकाश नहीं है। अयि वरानने! इन सब लिङ्गके नामोच्चारणसे भी यह महासङ्कटमें दुःख हरण करते हैं। अयि गिरीन्द्रकन्ये! इस क्षेत्रका यही परम हृदय रहस्य है। यह

चतुर्द्दशलिङ्ग भी मेरे सान्निध्यकर समझना! सबके मुक्तिदायक यह जो चतुर्द्दश लिङ्ग वर्णित हुए, मैंने इन सबको चतुर्द्दश भुवनका सार ले अपने महाभक्तगणके प्रति कृपावश निर्म्माण किया है। यह प्रसिद्ध है, कि इस क्षेत्रमें असंख्य मुक्ति होती है, उसके कारण मेरे यह प्रसिद्ध चतुर्द्दश लिङ्ग हैं। अयि कान्ते! जो भक्तगण आनन्दकाननमें इन सब लिङ्गका ध्यान करते हैं, वही व्रतधारी और तपस्वी हैं। जो दूरसे भी इन काशीस्थित चतुर्द्दशलिङ्गका ध्यान करते हैं, उन्हें योगाभ्यास और दानफल मिलता है। मुनिश्रेष्ठगणने जो इष्टपूर्त्तधर्म्म प्रणयन किया है, उन सबका फल यावज्जीवन निष्पाप रहनेसे पाया जाता है, किन्तु अयि पार्व्वति! अविमुक्तक्षेत्रमें जो व्यक्ति, इन सब महालिङ्गकी एकबार अर्च्चना करते हैं, इसमें सन्देह नहीं, कि वह मुक्ति पाते हैं। स्कन्दने कहा,—हे विप्र! विन्ध्यशत्रो! भगवान् शम्भुने निज भक्तगणके हितार्थ और जो कुछ देवीसे कहा था, वह कहता हूं, सुनो! उनमें (१) शैलेश्वर, (२) सङ्गमेश्वर, (३) स्वर्लीन, (४) मध्यमेश्वर, (५) हिरण्यगर्भ, (६) ईशान, (७) गोप्रेक्ष, (८) वृषभध्वज, (९) उपशान्तशिव, (१०) ज्येष्ठ, (११) निवासेश्वर, (१२) शुक्रेश्वर, (१३) व्याघ्रलिङ्ग और (१४) जम्बुकेश्वर यह चतुर्द्दश लिङ्ग हैं। हे मुने! यह चतुर्द्दश महायतन हैं; इन सबकी सेवासे मनुष्य मुक्ति पाते हैं। चैत्रमासकी कृष्णा प्रतिपद्से चतुर्द्दशी तिथि पर्य्यन्त इनकी पूजा यत्नके साथ करना सज्जनका कर्त्तव्य है। मुमुक्षुगण महाउत्सवपूर्व्वक इन सबकी वार्षिक यात्रा करें; इससे निश्चय उनका अभीष्ट सिद्ध होगा। हे मुने! इन चतुर्द्दश महालिङ्गका यत्नके साथ दर्शन करनेसे दुःखसागर संसारमें जीवको फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। स्वयं भगवान्ने पार्व्वतीसे कहा था, कि अयि प्रिये! यही क्षेत्रका परम तत्त्व है; संसाररोगग्रस्त मनुष्योंका यही परम औषध है, यही क्षेत्रका उपनिषद् है; यही परम मुक्तिबीज है। अयि प्रिये! इन लिङ्गसमूहको कर्म्मकाननका दावानलस्वरूप समझना। हे देवि! एक एक लिङ्गकी महिमाका आदि और अन्त नहीं है; वह महिमा मैं ही केवल जानता हूं और कोई नहीं जानता। हे मुने! यह बात सुनकर देवीने पुलकिततनु हो, सर्व्वज्ञ सर्व्वदाता, देव ईशानको प्रणामकर उनसे फिर कहा था,—हे प्राणवल्लभ! आपने जो काशीका यह परम रहस्य कहा, वह सुनकर मेरा मन अत्यन्त उत्सुक हुआ है। हे कारुणेश्वर! आपने जो महानिर्व्वाणके कारण सारात्सार, एक एक लिङ्ग कहा, सुननेसे ही पापहारी, उन चतुर्द्दश लिङ्गका माहात्म्य एक एककर मुझसे कहिये। अति पुण्यतम धर्म्मकण्टक क्षेत्रसे यहां ओङ्कारेश्वर

किस तरह आयी? उनका स्वरूप कैसा है? पहले किस व्यक्तिने इनकी आराधना की थी? आराधित होकर इन्होंने कौनसा वर प्रदान किया था? पार्व्वतीका वाक्यसुधा पानकर तब देवदेव, अति विचित्र ओङ्कारेश्वरकी कथा कहने लगे। देवदेवने कहा,—अयि अपर्णे! यहां कैसे ओङ्कारेश्वर लिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ, उस विषयकी बात मैं तुमसे कहता हूं, सुनो! हे महादेवि! अगले समयमें इस आनन्दवनमें विश्वयोनि ब्रह्मा परम समाधियोगपूर्व्वक घोरतर तपस्या करने लगे। फिर सहस्र युग पूर्ण होनेपर एक परम ज्योति दशदिङ्मुख विद्योतितकर सप्तपाताल भेदकर उठी। अकपट समाधिबलसे जो परमज्योति अन्तरमें आविर्भूत हुई थी, वह विधाताके बाहर आविर्भूत हुई। भूभाग विदीर्ण होनेके समय जो चटचट ध्वनि हुई, उस शब्दके सुननेसे विधाताने क्रमशः समाधि भङ्ग की। फिर समाधि त्यागकर जैसे ही उन्होंने नयनद्वय खोलकर इधर उधर देखा, उसी समय सामनेसे सत्त्वगुणमय, ऋग्वेदका उत्पत्तिक्षेत्र, सृष्टिपालक, नारायणस्वरूपी, तमोगुणके पार स्थित, आदिम अक्षर साक्षात् अकार दिखाई दिया। फिर उसके आगे यजुर्व्वेदका योनिस्वरूप, प्रतिविम्बित अपनी मूर्त्तिकी तरह सर्व्वस्रष्टा, रजोरूपी उकार अक्षर दिखाई दिया। उन्होंने फिर आगे देखा, किसङ्केत यहकी तरह कृष्णावर्णा, तमोरूपी, सामवेदका उत्पत्तिस्थान, प्रलयका कारण साक्षात् रुद्रमूर्त्ति मकार विराजमान है। इसके उपरान्त विधाताने देखा, कि विश्वरूपाकृति, सगुण अथच निर्गुण परमानन्दमूर्त्ति अनाख्येय नादस्वरूप उसके आगे विराजमान हैं, जिन्हें सर्व्ववाङ्मयका कारण शब्दब्रह्म कहते हैं। फिर विधिने तपोबलके कारणसमूहके कारण जगत्के आविर्भूत, विन्दुरूप परात्परनादके ऊपरी भागमें देखा! स्वभावतः इस समस्त विश्वके अवन (रक्षण) हेतु जिन्हें "ओं" कहते हैं, भक्तको उन्नीत करनेकी वजह जो "ओं" नामसे कीर्त्तित हैं। उन रूपहीन अथच रूपवान् पुरुषको ब्रह्माने प्रत्यक्ष देखा! जो अति जपपरायण व्यक्तिको भवसागरसे पार करते हैं, उन तारकब्रह्मको ब्रह्माने देखा। परम निर्व्वाण प्रार्थिगणके स्तव करनेकी वजह और सर्व्वापेक्षा अधिक होनेकी वजह जो "प्रणव" नामसे विख्यात हैं और अपने सेवक पुरुषको परमपदसे नीत करनेकी वजह जिन्हें "प्रणव" कहते हैं, उन प्रशान्त प्रणवरूपीको विधिने देखा। जो त्रयीमय, तुरीय अथच तुरीयातीत अखिलात्मक और नादविन्दुरूपी हैं; हंसवाहनने उन्हें नेत्रपथका पथिक किया। जिनसे निखिल योनि साङ्ग वेद उद्भूत हुए हैं, पद्मयोनिने उन वेदत्रयके आदि

कारणको सामने देखा ! जो सत्त्व, रज, तमोगुणमें वह बारबार तेजोमय वृष शब्द करते हैं, वह परम पुरुष परमेष्ठी दिखाई दिये । जिनके चार शृङ्ग सात हाथ दो मस्तक और तीन चरण थे, उन देवको विधाताने देखा ! जिनके अन्तरमें भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान,—सभी लीन हैं, उन बीजशून्य बीजस्वरूपको विरञ्चिने प्रत्यक्ष देखा ! जिनमें आब्रह्मस्तम्ब पर्य्यन्त लीन अन्विष्ट होते हैं, इसीलिये साधुजन जिन्हें "लिङ्ग" कहते हैं, वह पद्मयोनिको दिखाई दिये । जो पञ्च अर्थके वाच्य हैं, जो पञ्चब्रह्ममय और आदि पञ्चस्वरूप हैं ; ब्रह्माने उनका दर्शन किया । शीघ्र ही विधाता प्रपञ्चसे भिन्न पञ्चाक्षर लिङ्गरूपी शङ्कर ईश्वरको देख स्तव करने लगे । ब्रह्माने कहा, हे सदाशिव ! तुम ओङ्काररूपी, अक्षरमूर्त्तिधारी, अकारादि वर्णोंकी उत्पत्तिके कारण हो ; तुम्हें प्रणाम है । तुम अकार, उकार, मकार—ऋगयजुःसामरूपी और रूपातीत हो ; तुम्हें नमस्कार है । तुम नाद, विन्दु और कलारूपी हो ; तुम अलिङ्ग· लिङ्गरूपी हो ; तुम सर्व्वस्वरूपी हो ; तुम्हें नमस्कार है । हे आद्यन्तरहित ! तुम तेजोनिधि, भव, रुद्र और सर्व्वतोमय हो, तुम्हें नमस्कार है । तुम उग्र, भीम, पशुपति और तारस्वरूपी हो ; तुम्हें नमस्कार है । हे शितिकण्ठ ! तुम मायाशून्य, शिवतर और कपर्द्दी हो : तुम्हें नमस्कार है । हे गिरिश ! तुम्हीं मीढ़ुष्टम, तुम्हो शिपिविष्ट, तुम्हीं ह्रस्व, खर्व्व, वृहत् और वृद्ध हो ; तुम्हें नमस्कार है । तुम कुमारगुरु, कुमारमूर्त्ति हो ; तुम्हीं श्वेत, कृष्ण, पीत, अरुण हो ; तुम्हें नमस्कार है । तुम धूम्र, पिङ्गल, शवल, पाटल, हो ; तुम्हीं हरित्, तुम्हीं नानावर्णधारी, तुम्हीं वर्णोंके भी पति हो ; तुम्हें नमस्कार है । हे ईश ! तुम्हीं स्वर, तुम्हीं व्यञ्जन, तुम्हीं उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वर हो ; तुम्हीं ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतस्वर हो ; तुम्हें नमस्कार है । तुम विसर्ग, अनुस्वार, सानुनासिक और निरनुनासिक वर्ण हो ; तुम्हें नमस्कार है । तुम दन्त्य, तालव्य, ओष्ठ और उरस्य वर्णरूपी हो ; तुम्हें नमस्कार है । तुम उष्म और अन्तःस्थ वर्णस्वरूपी, पिनाकी हो; तुम्हें नमस्कार है । तुम परम और निषादस्वर हो, तुम्हीं निषादपति हो ; तुम्हें नमस्कार है । तुम वीणा, वेणु, मृदङ्गादि वाद्यरूपी हो ; तुम्हें नमस्कार है । तुम्हीं तारस्वर, तुम्हीं मन्द्र, तुम्हीं घोर, तुम्हीं अघोररूपी हो ; तुम्हें नमस्कार है । तुम्हीं ताल, तुम्हीं स्थायी सञ्चारीभेदमें मूर्च्छनापति हो, तुम्हीं तालप्रिय, तुमसे ही लास्य ताण्डवकी उत्पत्ति है ; तुम्हें नमस्कार है । हे तौर्य्यत्रिकमहाप्रिय ; तुम्हीं नृत्य, गीत और वाद्यरूपी हो ; तुम्हीं निर्व्वाणश्रीदाता

हो ; तुम्हीं स्थूल, सूक्ष्म, दृश्य, अदृश्य हो ; तुम्हीं अर्व्वाचीन, प्राचीन, हो ; तुम्हीं वाक्प्रपञ्चस्वरूप हो, तुम्हीं प्रपञ्चपद हो ; तुम्हें नमस्कार है। तुम एक हो, तुम अनेक हो, तुम्हीं सत्, तुम्हीं असत्, तुम्हीं शब्दब्रह्म, तुम्हीं परब्रह्म हो ; तुम्हें नमस्कार है। तुम वेदान्तवेद्य, वेदपति, वेदस्वरूपी और तुम्हारी मूर्त्ति वेदगोचर है ; तुम्हें नमस्कार है। हे पार्व्वतीश ! तुम्हें नमस्कार है। हे जगदीश ! तुम्हें नमस्कार है। हे देवदेवेश ! देवगणके दिव्यपददातः। हे शङ्कर ! हे महेश्वर ! तुम्हें नमस्कार है। हे जगदानन्द ! अग्निशेखर ! हे मृत्युञ्जय ! त्र्यम्बक ! हे पिनाकपाणि ! त्रिशूलधारिन् ! त्रिपुरारे ! हे अन्धकरिपो ! तुम्हें नमस्कार है। हे कन्दर्पदर्पहारक ! तुम्हीं जालन्धर, तुम्हीं काल, तुम्हीं कालके काल, तुम्हीं कालकूटभक्षक हो ; तुम्हें नमस्कार है। हे भक्तगणके विपद्हारक ! हे अभक्तगणके एकमात्र विपद्दातः ! तुम्हीं ज्ञान, तुम्हीं अज्ञानस्वरूपी, तुम्हीं सर्व्वज्ञ हो ; तुम्हें नमस्कार है। योगिसत्तम ! तुम योगिगणको योगविषयमें सिद्धिदान करते हो ; हे तपोधन ! तुम तपस्वियोंके तपस्याफलदाता हो ; तुम्हीं मन्त्र, तुम्हीं मन्त्रफलदाता हो ; तुम्हीं महादानके फलस्वरूप, तुम्हीं महादानप्रद हो ; तुम्हें नमस्कार है। हे महायज्ञफलप्रद ! हे ईश ! तुम्हीं महायज्ञ, तुम्हीं सर्व्व, तुम्हीं सर्व्वग, तुम्हीं सर्व्वदाता, तुम्हीं सर्व्वदर्शी, तुम्हीं सर्व्वभुक्, तुम्हीं सर्व्वकर्त्ता, तुम्हीं सर्व्वसंहारकारक, तुम्हीं योगिगणके हृदयाकाशमें विराजमान रहते हो ; तुम्हें नमस्कार है। हे त्राणकारिन् ! तुम्हीं सर्व्वमर्त्ति अवलम्बनकर विष्णुरूपमें शङ्ख चक्र गदा धारणकर त्रिभुवनका पालन करते हो ; तुम्हें नमस्कार है। हे नीरजाक्षपदप्रद ! तुम्हीं रजोरूप अवलम्बनकर विधातृरूपमें इस विश्वका यथाविधान सृजन करते हो, तुम्हें नमस्कार है। हे महाश्मशानचारिन् ! तुम्हीं महारुद्र, तुम्हीं महाभीषण भुजङ्गधारी, तुम्हीं महाभीम हो ; तुम तामसमूर्त्ति धारणकर कृतान्तका भी अन्तविधान करते हो। तुम प्रलयकालमें कालाग्नि रुद्रमूर्त्ति धारणकर संवर्त्तमेघ प्रेरण करते हो। हे अज ! तुम प्रकृति और पुरुषरूपसे महत् प्रभृति अखिल जगत् निमेषके भीतर ही फिरसे आविष्कार करते हो, तुम्हारा नेत्र मूंदना और खोलना ही सृष्टि और प्रलयका कारण है, तुम्हें नमस्कार है। हे धूर्जटे ! तुम स्वैरचारी हो, तुम्हारा कपालधारण क्रीड़ामात्र है ; तुम्हारे कण्ठमें जो नृमुण्डमाला है, वह भस्मीभूत निखिलका दीप्यमान बीजमाला है। हे शम्भो ! तुमसे ही यह समस्त चराचर उद्भूत और तुममें ही अवस्थित है ; तुम वाक्पथके अगोचर

हो; तुम्हारा स्तव करनेमें कौन समर्थ है? तुम्हीं स्तवकर्त्ता, तुम्हीं स्तुति, तुम्हीं नित्य-स्तुत्य, तुम्हीं "नमःशिवाय" इस रूपमें ज्ञेय हो,—मैं और कुछ नहीं जानता। तुम्हीं मेरे शरण्य तुम्हीं मेरी परमगति हो,—तुम्हें प्रणाम करता हूं। हे ईश! तुम्हें बारबार नमस्कार है। विधाताने इस तरह बारबार कहकर प्रणवाख्य महालिङ्गरूपी महेश्वरको भूतलमें दण्डवत् प्रणाम किया। ईश्वरने कहा,—अयि-गिरीन्द्रपुत्रि! उन ब्रह्माका परम ऐश्वर्य्य सम्पदका मूलीभूत परम विचित्र स्तुति सुनकर मैं तुष्ट हुआ। इसके उपरान्त मैंने, मूर्त्तिके हित होकर भी उस लिङ्गसे शङ्कर मूर्त्तिमें आविर्भूत हो उनसे कहा,—"हे चतुर्म्मुख! मैं तुम्हारे स्तवसे प्रसन्न हुआ हूं, वर ग्रहण करो।" यह बात सुनते ही विधाताने उठकर मुझे प्रत्यक्ष देख फिर "जय जय" ध्वनिकर हाथ जोड़ मुझे प्रणाम किया। फिर कमलासन, आनन्दवाष्पपूर्णनेत्र और पुलकित शरीर हो गद्गदस्वरसे कहने लगे,—हे देवदेव! यदि मेरे प्रति प्रसन्न हुए हैं और वर अवश्यदेय विचारते हैं, तो हे शङ्कर! इन महालिङ्गमें आपका सान्निध्य हो, यही वर मुझे प्रदान करिये, मैं दूसरे वरको प्रार्थना नहीं करता। हे भक्तकामोपदातः! इन लिङ्गका नाम—ओङ्कारेश्वर हो। स्कन्दने कहा, हे विप्रर्षि! तब भगवान् सदाशिवने विधाताकी ऐसी बात सुनकर "तथास्तु" कहा और उस स्तवसे सन्तुष्ट हो तत्क्षणात् उन्हें और भी अनेक वर प्रदान किये। हे सुरश्रेष्ठ तपस्विवर! तुम सब वेदके विधान हो। तुम सबके पितामह और माननीय होकर रहो। हे विधे! शब्दब्रह्ममय, ओङ्काररूप यह परम लिङ्ग तुम्हारी ही तपस्याफलदानके लिये उत्थित हुए हैं। इनकी आराधना करनेसे ब्रह्मपद पुरुषके दूरवर्त्ती नहीं होगा। इस आनन्दकाननमें सब जीवों-को मुक्तिके लिये अकार, उकार, मकार, विन्दु और नाद संज्ञक ऐसे पञ्चायतन यह ईशान लिङ्ग उत्थित हुए हैं। जीव यदि मत्स्योदरी तीर्थमें स्नानकर इन ओङ्कारेश्वरका दर्शन करेंगे, तो फिर उन्हें जननीजठर यन्त्रणा भोगना न पड़ेगी। इनको ही नादेश्वर लिङ्ग कहते हैं;—यह लिङ्ग अति दुर्लभ हैं। कपिलेश्वरके पास जब गङ्गा आईं, तभीसे उसे मत्स्योदरी कहते हैं; वहां स्नान करनेसे मनुष्यका ब्रह्महत्यापाप दूर होता है। गङ्गातोयमिश्रित वरणा नदीके उत्क्षिप्त जलमें मनुष्य यदि स्नान और नादेश्वर लिङ्गका दर्शन पावें, तो फिर उन्हें किसी तरहका शोक न रहेगा। अष्टमी और चतुर्द्दशी तिथिको षष्ठिसहस्र कोटि तीर्थ, सागरके साथ मत्स्योदरीमें प्रवेश करते हैं। जब गङ्गा ओङ्कारेश्वरके समीप आती हैं, तब देवता, ऋषि और

पितृगणको प्रिय अति पुण्यकाल उपस्थित होता है। उस समय ओङ्कारेश्वरके समीप मत्स्योदरी तीर्थमें स्नान, तपस्या, दान, होम और देवार्च्चना अक्षय फलजनक होती है। ओङ्कारेश्वरके दर्शन मात्रसे अश्वमेध यागका फल मिलता है, अतएव काशीमें बहुत यत्नके साथ ओङ्कारेश्वरका दर्शन करना उचित है। जो व्यक्ति नादेश्वरका दर्शन नहीं करते, उनका दुर्लभ मनुष्यजन्म चतुर्वर्गका एकमात्र साधन होनेपर भी पानीके बुलबुलेकी तरह वृथा होता है। मत्स्योदरी जलमें स्नान और पिण्डदानकर कपिलेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्यको पितृऋणसे मुक्ति मिलती है। मोहवश कितने ही महापातक करके भी मनुष्य यदि काशीस्थित ओङ्कारेश्वरका दर्शन करें, तो फिर उन्हें कृतान्त भय नहीं रहता। पितृपुरुषगण अपने किसी सन्तानको ओङ्कारेश्वरकी दर्शनयात्रा करते देख आनन्दसे नाचने लगते हैं; कारण, वह सन्तान जिन जिन पितृपुरुषोंको स्मरणकर उन्हें नमस्कार करता है, उन्हें ब्रह्मपद मिलता है। मनुष्य नियुत रुद्र-मन्त्र जपकर जो फल पाते हैं, भक्तिपूर्व्वक ओङ्कारेश्वरका दर्शन करनेसे ही निश्चित वह फल मिलता है। जिस मनुष्यने आनन्दकाननमें सर्व्वाभीष्टदाता ओङ्कारेश्वरका दर्शन नहीं किया, उसका जन्म केवल भूमिभारके निमित्त गणनीय होता है। इन ओङ्कारेश्वरका दर्शन करनेसे ही समुदय पृथिवीस्थ अखिल लिङ्गका दर्शन होता है। यदि मनुष्य ओङ्कारेश्वरको प्रणामकर दूसरी जगह जाकर मृत्युको प्राप्त हों, तो वह देहान्तमें स्वर्गलोक पाकर, दूसरे जन्ममें काशीमें मुक्ति पाते हैं। हे ब्रह्मन्! यह निश्चित जानो, कि मैं इस लिङ्गमें सदा अवस्थान करूंगा। जो व्यक्ति इनकी अर्च्चना करेंगे, उन्हें मोक्ष प्रदान करूंगा। मनुष्य,एकबार मात्र भी इन ओङ्कारेश्वरको प्रणाम करनेसे, मेरे परम अनुग्रहसे निःसंशय कृतकार्य्य होंगे। ओङ्कारेश्वरके पश्चिम सर्व्वोत्कृष्ट तारकतीर्थ विराजमान है, वहां स्नान करनेसे मनुष्य दुर्गतिसे निस्तार पाते हैं। जो ओङ्कारेश्वरके भक्त हैं, वह कदापि मनुष्य नहीं, वह मनुष्यचर्म्ममें आवृतमात्र हैं, किन्तु साक्षात् रुद्र हैं। इन लिङ्गका माहात्म्य औरोंपर अवगत न होने पावे। हे विधे! इस लिये, कि तुम्हारे ही पुण्यबलसे यह लिङ्ग यहां आविर्भूत हुए हैं, अतएव तुम इन लिङ्गके प्रभावसे सर्व्वतस्वक्ष होगे। हे विधातः! तुम इस चराचर विश्वका सृजन करो। भगवान् शम्भु ब्रह्माको ऐसा वर प्रदानकर उसी महालिङ्गमें लीन हुए। स्कन्दने कहा,—हे मुने! आजतक ब्रह्मा उन लिङ्गकी आराधना करते हैं। मनुष्य इनका, ब्रह्मकृत अथवा आत्मकृत स्तवसे स्तवकरें। ब्रह्मकृत स्तव पढ़-

सर्व्व पापमुक्त हो महापुण्य और उत्तम स्थान पाता है। यदि मनुष्य वर्षभर यावत् त्रिकालीन इस ब्रह्मकृत स्तवका पाठ करें, तो उन्हें ऐसा स्थान होता है, जिससे वह बन्धनसे विमुक्त हो जाते हैं।

त्रिसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितम अध्याय।

ओङ्कारमाहात्म्य।

स्कन्दने कहा,—हे वातापिसंहारक! अगले समय पाद्मकल्पमें दमन नामक ब्राह्मणकी जो पापनाशिनी घटना काशीमें हुई थी, वह कहता हूं, सुनो। भारद्वाजके पुत्र दमन नामक एक ब्राह्मण थे। वह उपनीत हो निखिलविद्या अध्ययनकर दुःखमय संसार और क्षणभङ्गुर जीवन देख परम निर्व्वेदके साथ घरसे निकल किसी ओर चले गये। वह प्रति कानन तीर्थ, आश्रम, नदी, पर्व्वत और समुद्रमें तपोयुक्त हो भ्रमण करने लगे। भूमण्डलमें इधर उधर जहां जितने सिद्ध क्षेत्र थे, उन्होंने वहां चित्त और इन्द्रियसंयतकर वास किया था; किन्तु उनके चित्तने कहीं स्थैर्य्य अवलम्बन नहीं किया और अभीष्ट विषयके उपदेष्टाको उन्होंने कहीं नहीं देखा। एक दिन उन तपस्वी दमनने दैवयोगसे रेवानदीके किनारे अमरकण्टकतीर्थ और ओङ्कारेश्वरका पवित्र महाधाम देखा। देखते ही उनका चित्त आनन्दित और स्थैर्य्यको प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त उन्होंने वहां देखा, कि विभूतिलिप्तदेह कितने ही पाशुपतव्रतधारी तापस, लिङ्गपूजाके उपरान्त प्राणायाम निर्व्वाहकर गुरुपादमूलमें सुखसे उपवेशनकर आगमशास्त्रका विचार करते हैं। फिर वह स्वयं उन लोगोंको प्रणामकर हाथ जोड़ अवनतकन्धरसे उनके आचार्य्यके पास आसीन हुए। उन्हें पास बैठा देख, तपश्चरणसे कृशदेह, सर्व्वतपस्विश्रेष्ठ शिवाराधनतत्पर, उन पाशुपतगणके आचार्य्य गर्ग नामक महामुनिने दमनसे पूछा,—"तुम कौन हो? कहांसे आये हो? तुमने किसलिये इस यौवनकालमें वैराग्य अवलम्बन किया है?—वह कहो।" ऐसा स्नेहपूर्ण वाक्य सुनकर उन दमनने कहा,—"हे पाशुपताचार्य्य, परमशैव, भृगुवंशतिलक! अपना चित्तव्यापार यथार्थरूपसे कहता हूं, सुनिये। मैं ब्राह्मण-पुत्र हूं; मैंने वेदशास्त्रमें बहुत श्रम किया था, फिर संसारकी असारता जानकर वाणप्रस्थाश्रम अवलम्बन किया। मैंने इस शरीरसे ही महासिद्धि लाभ करनेके लिये बहुत तीर्थोंमें स्नान, कोटि कोटि मन्त्रजप, कितने ही देवताओंकी सेवा, असंख्य होम बहुत दिनोंतक अनेक गुरुशुश्रूषा की है। मैंने महाश्मशानमें बहुत रात

वास किया है, सहस्र सहस्र दिव्य ओषधि संशोधित की है। कितने ही रसायन सेवन किये हैं। मैंने कृतान्तके वदन तुल्य, सिद्धपुरुषवह्नल, अनेक पर्व्वतकन्दरमें अतिसाहस अवलम्बनकर प्रवेश किया है। कितने ही नियम और यमके साथ महातपश्चरण किया है; किन्तु हे मुने! कहीं थोड़ासा भी सिद्धिका अङ्कुर दिखाई नहीं दिया। इस समय पृथिवी परिभ्रमण करता करता आपके पादमूलमें उपस्थित हुआ हूं, किन्तु आश्चर्य देखता हूं, कि उपस्थित होते ही मानो सिद्धिलाभ हुई है और इससे चित्तने स्थैर्य्य अवलम्बन किया है। आपके मुखकमलसे जो बात निकलेगी, इसमें सन्देह नहीं, कि उससे ही मुझे अवश्य महासिद्धि मिलेगी। अतएव इस पार्थिव स्थूल शरीरसे जिसतरह मुझे सिद्धि मिले, उस विषयमें उपदेश प्रदान कीजिये। इमनकी ऐसी बात सुनकर तब गर्गाचार्य्य प्रत्यक्षदृष्ट अति आश्चर्य्य उत्तम बात कहने लगे, वह उनके पाशुपतव्रतधारी मुमुक्षु शिष्यगण सभी स्थिरचित्तसे सुनने लगे। गर्गने कहा, यदि इस देहमें तुम सिद्धिवासना करते हो, तो उसका उपाय मैं कहता हूं, अवहितचित्त हो सुनो। यह अविमुक्त नामक महाक्षेत्र सज्जनोंका सर्व्वसिद्धिदायक है। यह धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप रत्नका परम आकर है, स्वैरचारी आश्रित जीवरूप पतङ्गका प्रदीपस्वरूप, अन्धकाररूप अज्ञानराशिके पक्षमें सहस्ररश्मि, कर्म्मरूप महीरुहका दावानल, संसारसागरका बड़वानल, निर्व्वाणलक्ष्मीका क्षीरसमुद्र और सुखका सङ्केतगृहरूप है। यह दीर्घ निद्रामें निद्रित जीवगणको परम उद्बोध प्रदान करता है। यह मार्गवृक्षकी तरह छायादानमें यातायातश्रमार्त्त पथिकोंका श्रम अपनोदन करता है। यह वज्रधारी इन्द्रकी तरह, बहुजन्मार्ज्जित पापाचलके पक्षच्छेदनमें व्रती है। इसके नामोच्चारण मात्रसे मनुष्योंका महाकल्याण होता है। यह विश्वनाथका नित्यधाम है, स्वर्ग और अपवर्गकी सीमा और इसकी भूमि स्वर्गनदीकी चञ्चल कल्लोलसे प्रतिनियत प्रक्षालित होती है। हे महामते! सर्व्वदुःखहारी ऐसे महाक्षेत्रमें मेरे प्रत्यक्ष जो घटना हुई है, वह कहता हूं। इस काशीमें कालभय या पापभय नहीं है। इस क्षेत्रकी महिमा सम्पूर्णभावसे कौन व्यक्ति वर्णन करनेमें समर्थ है? इस भूमण्डलमें जीवगणके पापमोचक जितने तीर्थ हैं, वह आत्मविशुद्धिके लिये नित्य काशीमें आते हैं। सर्व्वभोगी, सर्व्वविक्रयी काशीवासी व्यक्ति जो गति पाते हैं, वह अन्यत्र विविध यज्ञ और दान करनेपर पर भी नहीं मिलती। रागरूप बीजसे उत्पन्न विशाल संसारवृक्ष, इस काशीमें दीर्घनिद्रा-

रूप कुठारसे छिन्न होनेपर फिर बढ़ नहीं सकता। पृथिवीमें जितने ऊषर-क्षेत्र विद्यमान हैं, काशी उन सभोंमें प्रधान है। इस क्षेत्रमें देहबीज वपन करनेसे फिर वह पङ्कुरित नहीं होता। जो साधुगण देहावसानके समय काशीका स्मरण करते हैं, वह भी पापराशिमुक्त हो परमगति पाते हैं। सत्यादि सर्व्व-लोकको सम्पत्ति क्षणभङ्गुर है, किन्तु इस अविमुक्तक्षेत्रका सम्पद् कभी भङ्गुर नहीं, यह शिवकी आज्ञासे पाया जाता है। इस अविमुक्तक्षेत्रमें कृमि, कीट और पतङ्ग भी यदि देहत्याग करें, तो उनकी जो गति दिखाई देती है, वह ब्रह्माण्डके भीतर कहीं दिखाई नहीं देती। यदि कभी मनुष्य कालक्रमसे वाराणसी प्राप्त हो, तो उसे वह उपाय विधान करना उचित है, जिससे बाहर न निकलना पड़े। पूर्व्व मणिकर्णीश्वर, दक्षिण ब्रह्मेश्वर, पश्चिम गोकर्णेश्वर और उत्तर भावभूतेश्वर, यह चतुःसीमावच्छिन्न क्षेत्र ही अविमुक्त महाक्षेत्र है, यह महाफलदायक है। मणिकर्णिकामें स्नानकर विश्वेश्वर दर्शन और देव-प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्यको राजसूय-यज्ञका फल मिलता है और वहां श्राद्ध करनेसे पितृपुरुषगण उद्धार पाते हैं। यह निश्चय समझो, कि ब्रह्माण्डमें इस अविमुक्तक्षेत्रके समान साधकोंका सिद्धि-दायक क्षेत्र और कहीं नहीं है। इस क्षेत्रको अतिक्रूरबुद्धि, उग्र, महाप्रमथगण पाश और असि हस्तसे सदा रक्षा करते हैं;—अति भीषण अट्टहास नामक प्रमथ, गणकोटिवेष्टित हो जिसमें दुर्व्वृत्तगण प्रवेश न कर सकें, इसलिये दिन-रात पूर्व्वद्वारकी रक्षा करते हैं। भूत-धात्रीश प्रमथ भी कोटि अनुचरपरिवृत हो क्षेत्रके दक्षिणद्वारकी रक्षा करते हैं। गोकर्ण नामक प्रमथ, कोटिगणसे परि-वृत हो पश्चिमद्वारकी रक्षा करते हैं। घण्टाकर्ण नामक प्रमथ, असंख्यगणके साथ उत्तरद्वारकी रक्षा करते हैं। छाग-वक्त्र प्रमथ ईशानकोणकी भीषण नामक प्रमथ वह्निकोणकी, शङ्कुकर्ण नैऋतको-णकी और कृमिचण्ड नामक प्रमथ वायु-कोणकी रक्षा करते हैं। कालाक्ष, रण-भद्र, कौलेय और कालकम्पन नामक गण गङ्गापार अवस्थानकर पूर्व्वकी रक्षा करते हैं। वीरभद्र, अनल और स्थूल-कर्ण, यह रक्षाके लिये असि नदीके पार अवस्थित हैं। विशालाक्ष, महाभीम, कुण्डोदर और महोदर, यह देहलोदेशमें अवस्थानकर पश्चिमद्वारकी रक्षा करते हैं। नन्दिसेन, पाञ्चाल, खरपाद, करण्डक, गोपक और वभ्रु, यह वरणानदीके पार रक्षा करते हैं। ऐसे महापुण्यजनक क्षेत्रमें साधकगण ओङ्कारेश्वर लिङ्गकी साध-नासे इस पाञ्चभौतिक देहमें ही परम सिद्धि

पाते हैं।" इन लिङ्गकी आराधनासे कपिल, सावर्णि, श्रीकण्ठ, पिप्पल और अंशुमान्, यह सब पाशुपतव्रतधारी सिद्ध हुए हैं। एक दिन वह पांचोजन इन ओङ्कारेश्वरका पांच लिङ्ग निर्म्माणकर पूजापूर्व्वक "हुं हुं" ध्वनिकर नाचते नाचते इन लिङ्गमें लयको प्राप्त हो गये। हे महामते, द्विजसत्तम, दमन! यहां जो और एक अद्भुत व्यापार हुआ था, वह तुमसे कहता हूं। सुनो! एक भेकी यहां लिङ्गके समीप सदा विचरण कर निर्म्माल्यतण्डुल भोजन करती, इससे उसे सदा ही लिङ्गका प्रदक्षिण करना होता था, किन्तु शिवनिर्म्माल्य भक्षणनिबन्धन उस भेकीकी वहां मृत्यु नहीं हुई, निर्म्माल्यभक्षण पापसे क्षेत्रके बाहर उसकी मृत्यु हुई। वरं विषभक्षण करना, तब भी "शिवस्व" भक्षण न करना। विष एकका वध करता है, "शिवस्व" पुत्र पौत्रतक विनष्ट कर देता है। शिवस्वभोजनसे जिनका अङ्ग परिपुष्ट है, साधुगण, उन्हें कभी स्पर्श न करें। उस कर्म्मफलसे शिवस्वभोजीगण रौरव नरकमें वास करते हैं। एक दिन भेकी इधर उधर कूद रही है देखकर, काक, चञ्चुपुटसे उसे पकड़कर क्षेत्रसे बाहर हो गया। उस काकने क्षेत्रके बाहर भेकीको फेंक दिया, इसीसे उसकी मृत्यु हुई। फिर भेकीने लिङ्गके स्पर्श और प्रदक्षिण करनेके फलसे, इस श्रेष्ठक्षेत्रमें ही पुष्पवटुके घर यथासमय पुण्यवती पवित्रा दुहिता हो जन्म लिया। उस कन्याका अवयवसंस्थान उत्तम होनेसे, वह शुभलक्षणसम्पन्ना हुई। परन्तु निर्म्माल्यतण्डुल भोजनसे उसका मुख अर्द्धमुखकी तरह हुआ। वह कन्या अत्यन्त मधुरस्वरा और सम्यक् गीतरहस्यसे अवगत हुई। सप्त स्वर, तीन ग्राम, एक विंशति मूर्च्छना, एकोनपञ्चाशत् तान, एकाधिक शत ताल, छः राग, प्रत्येक रागकी पांच पांच पत्नी रागिणी,—छत्तीस राग-रागिणी, इतने सब रागसम्पन्न व्यक्तिगणके आनन्दवर्द्धक हैं। देशकालभेदसे और भी पञ्चषष्टि रागरागिणी हैं, सुतरां जितने ताल उतनी ही राग-रागिणी हैं। वह शुभव्रता मधुरालापा माधवी, उक्त स्वरग्रामादि अनुसार गीतनिगमवचन द्वारा नित्य ओङ्कारलिङ्गकी पूजा करती थी वह पुष्पवटुदुहिता, अमूल्य यौवनकाल पाकर भी पूर्व्व जन्मके वासनाबलसे ओङ्कारलिङ्गमें ही बहुमानसम्पन्ना होकर रही। हे दमन! स्वभावतः चञ्चल होनेपर भी महात्मा व्यक्तिका चित्त जैसे योग द्वारा स्थिर होता है, उसी तरह, स्वभावतः चञ्चल होनेपर भी उसका चित्त उन लिङ्गकी सेवामें ही स्थिर हुआ। उस कन्याको दिनमें क्षुधातृष्णा पीड़ा दे नहीं सकती थी, रातमें निद्रा उसे कातर नहीं करती थी; पुष्पवटुदुहिता लिङ्ग दर्शनमें मनमें आलस्य नहीं करती थी। दिन रातमें

जितने वस्तुनिर्म्मेय हैं, वह साध्वी कन्या, उतने समयको भी महाविघ्न समझा करती थी। "निमेषपातके समय लिङ्गका दर्शन न होनेसे निमेषान्तरित जितना समय व्यर्थ गया, उसके लिये क्या प्रायश्चित्त होगा?" माधवी ऐसी चिन्ता करती हुई ओङ्कारकी सेवा करती; कभी ओङ्कार-लिङ्गकी सेवा परित्याग नहीं करती थी। कभी प्यास मालूम होनेपर, वह लिङ्ग-नामामृत ही पीती थी। उसके कर्णान्ता-कृष्टनयनयुगल भी सज्जनगणके हृदयाका-शस्थित ओङ्कार लिङ्गके सिवा और कुछ देखनेके अभिलाषी नहीं होते थे। उसके कर्णयुगल, दूसरा शब्द ग्रहण नहीं करते थे; उसके करद्वय भी ओङ्कारलिङ्गकी पूजादि कर्म्मानुष्ठानमें ही निपुण हुए थे। उसके चरणयुगल भी निर्व्वाणलक्ष्मी अधिष्ठित ओङ्कारेश्वरकी प्राङ्गणभूमिके सिवा और कहीं सुखाभिलाषसे विचरण नहीं करते थे। ब्रह्मप्रकाशक प्रणववाच्य शब्दब्रह्ममय त्रयीमूर्त्ति नादविन्दुकलाका आश्रय, सदचर, आदिरूप विश्वरूप, कार्य्यकारणरूपी, वरेण्य, वरद, वर, शाश्वत, शान्त, ईश्वर, सर्व्वलोकैकजनक, सर्व्वलोकैकरक्षक, सर्व्वलोकैकसंहारक, सर्व्व-लोकैक-वन्दित, आद्यन्तवर्ज्जित, अव्यय, नित्य, शिव, शङ्कर, अद्वितीय, त्रिगुणातीत, उपाधिशून्य, निराकार, निर्व्विकार, निरञ्जन, निर्म्मल, निरहङ्कार, निष्प्रपञ्च, स्वप्रकाश, स्वात्माराम, अनन्त, सर्व्वग, सर्व्वदर्शी, सर्व्वप्रद, सर्व्व सुखप्रद, परम-सार, सर्व्वओङ्कारेश्वर, इस तरहकी बातें उसकी वागिन्द्रिय दिनरात उच्चारण करतीं; कभी किसी दूसरेका नाम ग्रहण नहीं करती थीं। उसकी रसना दिनरात ओङ्कारेश्वरका नामामृतरस आस्वा-दन करती थी; दूसरा रस नहीं जानती थी। माधवी ओङ्कारेश्वरका प्रासादसम्मा-र्ज्जन, प्रासादको चारो ओर चित्रसमूह-प्रस्तुति और पूजापात्र शोधन करती थी। वहां ओङ्कारेश्वरशिवपूजानिरत जितने शैव रहते थे, वह कन्या उन लोगोंको पितृज्ञानसे अति भक्तिके साथ नित्य पूजा करती थी। एक दिन वैशाखमासकी चतुर्द्दशीके दिन उपवास और रात्रिजाग-रणकर वह महामती माधवी प्रातःकाल,—जब भक्तगण यात्रा करनेके लिये नाना स्थानमें गये थे, तब मन्दिर मार्ज्जनादि करनेके उपरान्त सहस्रलिङ्गकी पूजाकर मधुर शिवगीत गान, भावावेशसे नाच और ओङ्कारेश्वरशिवका ध्यान करती हुई वह उसी पार्थिव देहसे ही लिङ्गमें विलीन हुई। हमलोगोंके आचार्य्यप्रवर तपस्वि-योंके सामने गगनव्यापि जो ज्योति उस लिङ्गसे प्रादुर्भूत हुई थी, उसके भीतर ही वह बाला माधवी ज्योतिर्म्मयरूपमें थी। आजतक काशीक्षेत्रनिवासिगण वैशाखमासकी शुक्लचतुर्द्दशीको महोत्सवके

साथ वहांकी यात्रा करते हैं। वहां उस चतुर्द्दशीको उपवास और रात्रिजागरण करनेसे, मनुष्य कहीं क्यों न मरें, प म-स्थान पाते हैं। ब्रह्माण्डके भीतर सब जगह जितने तीर्थ हैं, वह सभी वैशाख-मासकी शुक्लचतुर्द्दशीको ओङ्कारशिवके दर्शनार्थ आते हैं। लिङ्गके सामने श्रीमुखी नाम्नी परमोत्तमा एक गुहा है, वही पातालका द्वार है, सिद्धगण वहीं वास करते हैं। जो शोभनव्रतसम्पन्न हो पांच-रात इस गुहामें अवस्थिति कर सकें, वह नागकन्याओंको देख सकते हैं और नाग-कन्यायें उनका भविष्यत् शुभाशुभ कह सकती हैं। गुहाके उत्तर "रसोदक" नामक एक कूप है; बराबर छः महीने उस कूपका जल पीनेसे साक्षात् ब्रह्मरसा-यन पिया जाता है। वहीं नादोत्पत्ति-स्थानमें नादेश्वरलिङ्ग वर्त्तमान हैं। जो व्यक्ति उनका दर्शन करते हैं, उन्हें सर्व्वनादात्मक विश्व सुनाई देता है। वहां प्राणी गङ्गावरणाप्लुत मत्स्योदरीप्रवाहमें स्नान करनेसे कृतार्थ होते हैं। उन्हें फिर शोक करना नहीं पड़ता। असंख्य ओङ्का-रेश्वरलिङ्ग सेवकगण दिव्यभावापन्न पार्थिव देहमें, तत्क्षणात् सिद्धि पाई है। सब ब्रह्माण्डमें अविमुक्तक्षेत्र श्रेष्ठ है, मत्स्यो-दरीके किनारेका ओङ्कारलिङ्गस्थान उसकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है। हे दमनक! काशीमें जिन्होंने ओङ्कारेश्वरकी प्रणाम और उनकी पूजा नहीं की है, वह उत्पन्न ही क्यों हुए? वह केवल मातृयौवननाशकके सिवा और कुछ भी नहीं हैं। हे सत्तम! विश्वेश्वरके मन्दरपर्व्वतसे इस आनन्द-काननमें आनेकी अवधिसे, सब आयतन पर्व्वत, सागर, नदी, तीर्थ और द्वीप सभी वहां आये हैं। हे मुने! अभी भाग्य-क्रमसे तुमने मुझे स्मरण करा दिया; मैं भी हूं; धीरे धीरे काशी जाऊंगा। महापाशुपतव्रतसम्पन्न यह मेरे शिष्यगण भी काशी जानेके अभिलाषी हैं, क्योंकि यह सभी मुमुक्षु हैं। जो वृद्धावस्थामें भी काशीसेवा नहीं करते, उन्हें महासुख कैसे मिलेगा? दुर्लभ मनुष्यजन्म तो गत-प्राय है। जबतक इन्द्रिय वैकल्य नहीं होता, उसके भीतर ही शिवका आनन्द-कानन यत्नके साथ सेवनीय है। जो शौनि-केतन शाम्भव आनन्दकाननका आश्रय करते हैं, उन महासुखके एकमात्र आश्रय जनगणको लक्ष्मी कभी परित्याग नहीं करतीं। वह अचला होकर रहती हैं। पाशुपतोत्तम गर्ग ऐसी रमणीय कथा कहकर भारद्वाजनन्दन दमनके साथ वारा-णसी नगरीमें उपस्थित हुए। गर्गाचार्य्य-समभिव्याहारी धर्म्मात्मा दमन भी श्रीमान् ओङ्कारनाथकी आराधनाकर उस लिङ्गमें लयको प्राप्त हुए। स्कन्दने कहा, हे इल्वलं-शत्रो! अविमुक्तक्षेत्रमें ओङ्कार एक परम स्थान है। हे मुने! वहां कितने ही

साधकोंने सिद्धि पाई है। कलिकलुषपूर्णचित्त व्यक्तियोंसे विशेषतः नास्तिकोंके निकट ओङ्कारेश्वरमाहात्म्य वक्तव्य नहीं है। जो शिवनिन्दा करते हैं, जो निर्व्विगण शिवसेवकी निन्दा करते हैं, जो पुराणनिन्दा करते हैं, वह कहीं और कभी सम्भाषणीय नहीं हैं। देवदेवने यह निश्चयकर गौरीसे कहा था, कि ओङ्कार सदृश लिङ्ग भूतलमें कहीं नहीं हैं। मनुष्य तद्गतचित्तसे यह अध्याय सुननेपर सब पापसे विमुक्त हो शिवलोक पाते हैं।

चतुःसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितम अध्याय।

त्रिलोचनाविर्भाव।

अगस्त्यने कहा, हे विशाख! महापातकविनाशिनी यह ओङ्कारकथा सुनकर, मेरी आकाङ्क्षा नहीं मिटी, अब आप त्रिलोचनलिङ्गसम्बन्धी बात कहिये। हे महामते षड़ानन! किसतरह परम पवित्र त्रिलोचनाविर्भाव हुआ, देवदेवने देवदेवीसे उनके सम्बन्धमें क्या कहा था? स्कन्दने कहा, हे मुने देवदेवने त्रिलोचनोत्पत्तिसम्बन्धमें जो बातें कही थीं, वह श्रमनिवारिणी कथा मैं कहता हूं, सुनो। विरजा नामक प्रसिद्ध पीठ है, वहां विविष्टप (त्रिलोचन) लिङ्ग हैं, उस पीठके दर्शनमात्रसे ही मनुष्य रजःशून्य होते हैं। हे कुम्भयोने! वहीं त्रिलोचनलिङ्गके दक्षिण तीन नदी मिलित हुई हैं। तीनो ही नदी पापहारिणी हैं। उन लिङ्गको स्नान करानेके लिये, साक्षात् सरस्वती, यमुना और अति सुखदायिनी नर्म्मदा, इन नदीत्रयने स्त्रीमूर्त्ति धारण की है। मूर्त्तिमती वह तीनो नदी हाथमें कुम्भ ले उन महातेजःसम्पन्न महत् विविष्टपलिङ्गको विसन्ध्या स्नान कराती हैं। उन विविष्टपलिङ्गकी तीन ओर, उन नदीत्रयने भी अपने अपने नामानुसार लिङ्ग स्थापन किये हैं; उन सब लिङ्गके दर्शनसे उक्त नदीत्रयमें स्नान करनेका फल मिलता है। विविष्टपलिङ्गके दक्षिण सरस्वतीश्वर लिङ्ग हैं। उनका दर्शन और स्पर्शन करनेसे सरस्वतीलोकप्राप्ति और जाड्यनाश होता है। विविष्टपलिङ्गके पश्चिम यमुनेशलिङ्ग हैं; पापीमनुष्य भी भक्तिपूर्व्वक उनका दर्शन करनेसे, यमलोक नहीं जाते। त्रिलोचनलिङ्गके पूर्व्व अवस्थित नर्म्मदेश्वरलिङ्गका दर्शन करनेसे उत्तम सुख मिलता है, उनकी पूजा करनेसे मनुष्यका गर्भवास नहीं होता। विविष्टपलिङ्गके पास पितृपिलातीर्थमें स्नान और त्रिलोचनका दर्शन करनेसे, क्या फिर शोक करना पड़ता है? विविष्टपलिङ्गको स्मरण करनेसे भी इसमें सन्देह नहीं, कि मनुष्य स्वर्गके राजा होते हैं। इसमें स-

न्देह नहीं, कि त्रिविष्टपलिङ्गदर्शक मनुष्य ब्रह्मपद पाते हैं। वही कृतार्थ और वही महाबुद्धि-सम्पन्न हैं, जिन्होंने आनन्दकाननमें त्रिलोचनलिङ्गको प्रणाम किया है, अथवा जिन शुद्धबुद्धि व्यक्तिने त्रिलोचनका नाम भी सुना है, इसमें सन्देह नहीं, कि वह सप्तजन्मार्ज्जित पापसे मुक्ति पावेंगे। पृथिवीमें जितने शिवलिङ्ग वर्त्तमान हैं, उन सबका दर्शन करनेसे जो फल मिलता है, मेरी समझमें, काशीमें त्रिविष्टपलिङ्गका दर्शन करनेसे, उससे अधिक फल होता है। काशीमें त्रिविष्टपलिङ्गका दर्शन करनेसे समग्र स्वर्गदर्शनका फल मिलता है, क्षणमें मनुष्यका सब पाप दूर होता और फिर गर्भभोग करना नहीं पड़ता। जो व्यक्ति पिलपिलातीर्थमें उत्तरवाहिणी गङ्गामें स्नान करते हैं, उन्हें सर्व्वतीर्थस्नानफल और सर्व्वयज्ञान्तस्नानफल मिलता है। महापवित्र नदीत्रय वहां सदा वर्त्तमान हैं, वहां श्राद्ध करनेसे फिर गयामें श्राद्ध करनेका प्रयोजन ही क्या है? पिलपिलातीर्थमें स्नान, वहां पिण्डदान और त्रिविष्टपलिङ्गका दर्शन करनेसे कोटि तीर्थफल मिलता है। और कहींका किया हुआ पाप काशीदर्शनसे विनष्ट होता है, किन्तु काशीमें पाप करनेसे पिशाचपद मिलता है। तब भी प्रमादवश शिवके आनन्दकाननमें पापकर त्रिविष्टपलिङ्गका दर्शन करनेसे, वह पाप विनष्ट होता है। सब भूभागके भीतर आनन्दकानन श्रेष्ठ है. वहां सब तीर्थ वर्त्तमान हैं। ओङ्कार स्थान उसमें भी श्रेष्ठ है; मोक्षपथप्रकाशक ओङ्कारलिङ्गक्षेत्रकी अपेक्षा मङ्गलस्वरूप त्रिलोचनलिङ्ग अति श्रेष्ठ हैं। तेजस्वियोंमें जैसे सूर्य्य, दृश्य वस्तुमें जैसे चन्द्र, वैसे ही सब लिङ्गोंमें त्रिलोचनलिङ्ग श्रेष्ठ हैं। असाधारण महासुखनिधि निर्व्वाणलक्ष्मीकी पदवी, त्रिलोचनलिङ्गपूजकोंके दूरवर्त्ती नहीं। एकबार त्रिलोचनपूजासे जो मङ्गल उपार्ज्जित होता है, दूसरे लिङ्गकी आजन्मपूजा करनेसे भी वह फल नहीं मिलता। जो महाबुद्धिशाली मनुष्यगण, काशीमें त्रिलोचनलिङ्गकी पूजा करते हैं, मेरे प्रति अभिलाषी त्रिभुवनवासिगण उनकी पूजा करेंगे। सर्व्वसंन्यासकर पाशुपतव्रत अवलम्बनकर इसके उपरान्त नियमसे स्खलित होनेपर भी, मनुष्य महापापसमूहविनाशक मोक्षनिक्षेपस्थान पुण्यराशि त्रिविष्टप महालिङ्गके रहते, किसका भय करते हैं? एकबार मात्र त्रिलोचनलिङ्गकी पूजा करनेसे शतजन्मार्ज्जित सब प्रकारके पापसे मुक्ति मिलती है। ब्रह्मघाती, सुरापायी, अशीतिरत्तिकाके अन्यून सुवर्णचोर, विमातृगामी और अन्यून संवत्सरकाल पूर्व्वोक्त पापियोंके संसर्गी—यह महापापी कहे जाते हैं। परदाररत, परहिंसारत, परनि-

न्दारत, विश्वासघाती, कृतघ्न, भ्रूणघाती, वृषलीपति, मातृत्यागी, पितृत्यागी, गुरुत्यागी, अग्निदाता, विषदाता, गोघाती, स्त्रीघाती, शूद्रघाती, कन्यादूषक क्रूर, पिशुन, स्वधर्मविमुख, निन्दक, नास्तिक, कूटसाक्षी, अपवादक, अभक्ष्य—भक्षक और अविक्रेय-विक्रयी इत्यादि पापयुक्त व्यक्ति भी त्रिलोचन लिङ्गको नमस्कारकर, पापसे निष्कृति पाते हैं, केवल शिवनिन्दक व्यक्ति निष्कृति नहीं पाते। जो मूढ़ व्यक्ति शिवनिन्दारत या शिवशास्त्रनिन्दक हैं, किसी शास्त्रमें कोई उनके निस्तारका उपाय दिखाई नहीं देता। जो अधमाधम व्यक्ति शिवनिन्दा करते हैं, समझो, कि वह आत्मघाती, त्रिलोकघाती और अनालाप्य हैं। जो शिवनिन्दारत और जो शिवभक्त व्यक्तिगणकी भी निन्दा करते हैं, वह जितने दिनो चन्द्रसूर्य्यका अस्तित्व है, उतने दिन घोर नरक भोगते हैं। मोक्षाभिलाषिगण यत्नके साथ काशीके शैवगणकी पूजा करें, शैवगणके पूजित होनेपर शिव निःसन्देह प्रसन्न होते हैं। सब पापोंका प्रायश्चित्त करनेके लिये, प्रमाणज्ञ व्यक्ति निःशङ्क यह बात कहेंगे, कि यदि पापभीत हुए हो, यदि प्रायश्चित्त करनेके अभिलाषी हुए हो, शास्त्रप्रमाण और मेरी बातको यदि सच मानते हो, तो सब छोड़ मनमें स्थिरनिश्चयकर आनन्दकाननमें,—जहां स्वयं विश्वेश्वर अवस्थित हैं, वहीं जाओ। उस क्षेत्रमें प्रविष्ट विश्वासी मनुष्योंको पापनिचय क्लेश नहीं दे सकते और वह परमधर्म पाते हैं। वहां नदीत्रय-परिसेवित अति निर्म्मल त्रिलोचन दृष्टिपातसे दूरीकृतमहापापराशि पिलपिला नामक पुण्य त्रिस्रोत महातीर्थमें स्नान, शास्त्रोक्त विधि-अनुसार तर्पणीयगणका तर्पण, "वित्तशाठ्य"-विवर्जित हो यथाशक्ति दान, त्रिविष्टपलिङ्ग दर्शन, फिर गन्ध, पञ्चामृत, विविधमाल्य, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र, बहुतर भूषण, घण्टा, दर्पण, चामर, विचित्रध्वजपताका इत्यादि पूजोपकरण द्रव्य, नृत्य, वाद्य, गान, जप, प्रदक्षिणा, सानन्द नमस्कार, परिचारकोंको पारितोषिक दान,—इस तरह अति भक्ति भावसे त्रिलोचनकी पूजाकर "मैं निष्पाप हूं" ऐसा कहकर ब्राह्मणोंसे भी कहलावें; प्राज्ञ मनुष्य ऐसा करनेसे आजतक क्षणमें निष्पाप होते हैं। इसके उपरान्त पञ्चनदमें स्नान, फिर, मणिकर्णिका कुण्डमें स्नान, फिर विश्वेश्वरको पूजा करनेपर महत् पुण्य मिलता है। महापातकविशोधक ऐसा ही प्रायश्चित्त कहा गया है; काशीमाहात्म्यनिन्दक नास्तिकके निकट यह वक्तव्य नहीं है! हे कुम्भयोने! अर्थलाभसे नास्तिकोंको इस शुभ प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनेवालेको, सत्य सत्य नरक मिलता है। पृथिवी प्रदक्षिणा करनेसे, जो सम्पूर्ण फल मिलता है, काशीमें प्रदोषके समय

त्रिलोचन शिवका सात बार प्रदक्षिण करनेसे ही वह फल होता है। काशीमें सर्पमयमेखलासम्पन्न त्रिविष्टप लिङ्ग का दर्शनकर दूसरी जगह मरनेसे भी जन्मान्तरमें उसे मुक्ति मिलती है। अन्य लिङ्गमें पुण्यकालका विशेषत्व है, त्रिविष्टप लिङ्गमें दिनरात मनुष्योंके लिये पुण्यकाल है। ओङ्कार-प्रमुख लिङ्गसमूह, पापराशिका अत्यन्त विनाश करते हैं सही, किन्तु हे पार्व्वति! त्रिलोचन लिङ्गकी शक्ति एक स्वतन्त्र प्रकारकी है। यह लिङ्ग जिस कारण सब लिङ्गोंकी अपेक्षा अत्युत्तम हैं, हे अपर्णे! मैं कहता हूं, मेरी बात कान लगाकर सुनो। अगले समयमें योगावस्थामें मेरे यह महत् लिङ्ग, सप्तपाताल भेदकर सबसे पहले भूतलमें निकले थे। हे गौरि! इस लिङ्गमें अति गुप्तभावसे अवस्थित रह, मैंने तुमको त्रिनेत्र प्रदान किया, जिससे तुम उत्तम दृष्टि सम्पन्ना हुई। हे देवेशि! उसी अवधिसे विष्टपत्रयस्थ अर्थात् त्रिभूवनवासी ज्ञानदृष्टिप्रद इन लिङ्गको "त्रिलोचन" कहा करते हैं। जो त्रिलोचन लिङ्गके भक्त हैं, वह सभी त्रिलोचन-सम्पन्न मेरे पारिषद् हैं। वही जीवन मुक्त है। हे महेशानि! त्रिलोचन-माहात्म्य मैंने ही छिपा रखा है, वह सम्पूर्णरूपसे कोई नहीं जानता। वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी तृतीयाकी पिलपिला ह्रदमें स्नानकर भक्तिपूर्व्वक उपवासी रह त्रिलोचनकी पूजा, फिर प्रातःकाल उसी ह्रदमें स्नान, फिर त्रिलोचनलिङ्गकी पूजा, फिर हर्षके साथ देवपितृ उद्देशसे अन्न और प्रदक्षिणायुक्त धर्म्मघट दानकर फिर शिवभक्तवृन्दके साथ पारण करनेसे, हे देवि! पार्थिवदेह परित्यागकर उसी पुण्यबलसे मनुष्य निश्चय मेरे श्रेष्ठगण (पारिषद्) होते हैं। हे गौरि! देवतागण मर्त्त्यगण, महासर्पगण, काशीमें जबतक त्रिलोचनलिङ्गका दर्शन नहीं करते, तबतक संसारमें घूमते रहते हैं। पिलपिला ह्रदमें स्नानकर एकबार त्रिविष्टप लिङ्गका दर्शन करनेसे, प्राणी फिर मातृगर्भमें वास नहीं करते। हे भामिनि! प्रतिमासकी अष्टमी और चतुर्द्दशीको तीर्थगण सब समयमें ही देवदेव त्रिलोचनका दर्शन करने आते हैं। त्रिविष्टप लिङ्गके दक्षिण पिलपिला सलिलमें स्नानकर वहां एकबार सन्ध्या करनेसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है। वहां ही पादोदक नामक पापविनाशक एक कूप है; उसका जल पीनेसे मनुष्यको फिर मर्त्त्यवासी होना नहीं पड़ता। त्रिलोचन लिङ्गके पास अनेकानेक लिङ्ग हैं, इस काशीधाममें दर्शन और स्पर्शनसे वह भी मुक्तिदान करते हैं। वहीं शान्तनवलिङ्ग गङ्गाके किनारे अवस्थित हैं; संसारतापित मनुष्य उन लिङ्गके दर्शनसे शान्तिलाभ करते हैं। हे मुने! उनके दक्षिण भीष्म-

श्वर नामक महालिङ्ग हैं; उनका दर्शन करनेसे काल, काम, कलि पीड़ाजनक नहीं होते। उनके पश्चिम द्रोणीश नामक कीर्त्तित महालिङ्ग हैं; इन लिङ्गकी पूजाके फलसे, द्रोणाने फिर ज्योतिर्मय देह धारण की थी। उनके सामने अति पुण्यप्रद अश्वत्थामेश्वर लिङ्ग हैं; इन लिङ्गकी पूजाके फलसे ही द्रोणनन्दनने यमका भी भय नहीं किया था। द्रोणेश्वर लिङ्गके वायुकोणमें बालखिल्लेश्वर परमलिङ्ग हैं; श्रद्धाके साथ इन लिङ्गका दर्शन करनेसे, सर्व्वयज्ञका फल मिलता है। उनके बायें अवस्थित वाल्मीकीश्वर नामक लिङ्गका सम्पूर्ण दर्शन करनेसे मनुष्य शोकशून्य होते हैं। हे कुम्भयोने! यहां और जो कुछ हुआ था, वह कहता हूं; देवदेवने भगवतीसे त्रिविष्टपका ऐसा ही माहात्म्य कहा था।

पञ्चसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितम अध्याय।

त्रिलोचनप्रभाववर्णन।

कार्त्तिकेयने कहा, हे मुने अगस्त्य! इस विरजापीठ शिवालयमें पहले जो एक व्यापार हुआ था, वह कहता हूं, सुनो। प्रलयकालमें भी इस नाना माणिक्य-खचित गवाक्षराजि विराजित, सुमेरुसदृश उच्च शिव-भवनने, विधातृसृष्ट पदार्थके धारणस्तम्भकी तरह, शोभा पाया था। हे मुनिवर! इस प्रासादके ऊपर स्थित सब-पताकाओंके पवनान्दोलित होनेपर मालूम होता, कि वह पापराशिको आनेके लिये निषेध कर रहे हैं और उसमें कितने ही सुवर्णमय पूर्णकुम्भ रखे रहनेसे जान पड़ता था मानो पूर्णशशधर उस अट्टालिकाके पक्षपाती हो वहीं आकर वास करते हैं। वहां एक कपोतमिथुन वास करते और नित्य वह दोनो प्रभात, मध्याह्न और सायाह्नमें उड़कर घूमनेके समय पक्षसञ्चालित वायुसे उस प्रासादकी सब धूलि विदूरित करते थे। वह वहांके शैवगणके कण्ठोच्चारित "त्रिलोचन, त्रिविष्टप" नाम सदा सुनते और सदा शिवसन्तोषकर चतुर्व्विध वाद्यकी ध्वनि सुनकर हृष्टचित्त हो वह कपोतयुगल त्रिसन्ध्या भगवान्‌की माङ्गलिक आरतिकी ज्योतिसे दूरस्थ भक्तवृन्दकी सब चेष्टा देखते थे। सुधीर वह कपोतयुगल, आहार न पानेसे कभी उसके लिये चेष्टित नहीं होते थे। शैवगणके उस प्रासादकी चारो ओर चावल आदि निक्षेप करनेपर वह उसे आहारकर इधर उधर विचरण करते और वहां विराजिता गङ्गा, यमुना, सरस्वती और नर्म्मदा, इन चारो पुण्य-नदीके सलिलमें ही कपोतमिथुनका स्नान और पानकार्य्य सम्पन्न होता था। इसी तरह सदनुशीलो विहगद्वयने, महादेवकी

अनुग्रहसे कितने ही काल बिताये, एक दिन एक॰ श्येनपक्षीने उस देवालयके मध्यगवाक्षमें सुखासीन कपोतमिथुनको देखा। उनको आयत्त करनेकी वासनासे उसने अन्तरीक्षसे उतरकर उसके सामने दूसरे एक देवगृहमें प्रवेश किया और वहांसे उनके जाने आनेकी राह देखता रहा। "यह किस राहसे किस समय कौन काम करते हैं, किस तरह इन दोनोको इस दुर्गम गृहसे आत्मसात् कर सकूंगा" वहां बैठकर श्येन इस तरहकी चिन्ता करने लगा। "यह यथार्थ है, कि दुर्गवास विचक्षणगणका प्रशंसाभाजन होता है; कारण, दुर्बल पुरुष दुर्गका आश्रयकर सबल शत्रु द्वारा पराभूत नहीं होता। एकमात्र दुर्ग राजाका जैसा कार्य्यसाधक होता है, प्रबलतम सहस्र हस्ती या लक्ष अश्व भी उनका वैसा कार्य्य निष्पादन नहीं करते। स्वाधीन और अविचेय दुर्गमें वास करनेसे कभी किसी शत्रुका भय करना नहीं पड़ता" वह श्येनपक्षी इस तरह दुर्गको प्रशंसाकर, पारावतमिथुनके ऊपर तीव्र दृष्टिनिक्षेप करता हुआ नभोमार्गमें उड़ गया। तबतक कपोतीने उस मांसाशी विहङ्गमकी चेष्टा देख स्वामीसे सम्बोधनकर कहा,—हे प्रियतम! हे विविधकामसुखाधार! आप इस सामने उड़ते हुए श्येनपक्षीको हमलोगोंका प्रबल शत्रु समझिये। कपोतीकी बात सुनकर कपोतने हंसकर कहा, हे प्रिये! तुम्हारी चिन्ता निरर्थक है, कहकर फिर कहने लगा, हे सुन्दरि! संसारमें कितने ही पक्षी विचरण करते हैं; उनमें कितने देवालयमें उपवेशन करते हैं और हमलोगोंका यह सुखनिवास भी सब पक्षियोंने देखा है; किन्तु उन लोगोंसे यदि किसी तरहका भय होता, तो सुखसे हमलोग वास न कर सकते! हे प्रिये! तुम चिन्तित मत हो, मेरे साथ सुखसे विचरण करो; मैं इस श्येनपक्षीसे कुछ भी शङ्कित नहीं होता। कार्त्तिकेयने कहा, कपोतीने कपोतकी ऐसी बात सुनकर उसके पैरकी ओर दृष्टिनिक्षेप करती हुई मौनभाव धारण किया; कारण, पतिकी प्रियकाङ्क्षिणी पतिव्रता नारी पतिके हितकी बात उपदेशकर, उसके अन्याय वाक्यका भी प्रतिवाद न कर उसका प्रतिपालन करती हैं। इस तरह वह दिन बीतनेपर फिर दूसरे दिन वह श्येन वहां आकर, क्षीणायु व्यक्ति जैसे मृत्यु द्वारा दृष्ट होता है, उसी तरह पारावतमिथुनके ऊपर निश्चल दृष्टिनिक्षेप करता रहा। श्येनपक्षी उस शिवालयकी चारो ओर भ्रमणकर कपोतयुगलके आने जानेकी राह देख उस दिन आकाशमें उड़ गया। तब कपोतीने अपने स्वामीसे कहा। हे नाथ! उस दुष्ट शत्रु श्येनको आपने देखा?

यह सुनकर कपोतने कहा, हे सुमुखी! हम गगनविहारी हैं; यह पक्षी हमलोगोंका कुछ न कर सकेगा। विशेषतः इस स्वर्गतुल्य आवासभूमिमें दुर्गमें, जबतक रहेंगी, तबतक किसी भयकी सम्भावना नहीं। आकाशसञ्चरणमें सब विशेष गति उसकी अपेक्षा मैं अधिक जानता हूं। प्रडीन, उड्डीन, संडीन, काण्ड, व्याड, कपाटिका, स्रंसनी, और मण्डलवती यह अष्टविधि गति कही गई हैं। मैं जैसा इन सब गतिका सुकौशल जानता हूं, आकाशचारी पक्षियोंमें वैसा कोई नहीं जानता। हे प्रियतमे। काहेकी चिन्ता?—जबतक मैं रहूंगा, तबतक तुम्हारे किसी प्रकारके असुखकी सम्भावना नहीं है। पतिकी बात सुनकर कपोती चुप हो रही। उसके दूसरे दिन भी वह श्येन अत्यन्त आनन्दगद्गदभावसे वहां आकर कपोतमिथुनसे कुछ दूर एक गुरुशिलापृष्ठपर बैठा और कुछ क्षण बैठकर उनका वासस्थान सम्यक् निरीक्षण करता हुआ चला गया। तब पारावतीका हृदय भयार्त्त होनेसे उसने फिर पतिसे कहा, हे नाथ! वह श्येन आज दुष्टकी तरह आकर हमलोगोंके वासस्थानमें अतिक्रूर दृष्टि निक्षेप कर गया है; हे प्रिय! यह स्थान इसी क्षण परित्याग करनेसे अच्छा है। पारावतने स्त्रीकी ऐसी बात सुन हंसकर कहा हे, सुन्दरि! तुम स्त्री भीरुस्वभाव हो, तुम समझ लो, कि यह श्येन हमलोगोंका कुछ भी अपकार कर नहीं सकता। उसके दूसरे दिन उसी तरह श्येनपक्षी वहां आकर दोपहरतक अवस्थानकर उनकी गतिविधि देखकर उड़ गया। इसके उपरान्त कपोतीने कपोतसे कहा, हे प्रियतम! यहां हमलोगोंकी मृत्यु उत्तरोत्तर सन्निहित होती जाती है; चलिये, यह स्थान परित्याग करें। इस दुष्टका आना जाना बन्द होनेपर फिर आयेंगी। हे नाथ! जो व्यक्ति स्वेच्छासे सर्व्वत्र गमन करनेमें समर्थ हैं, वह बुद्धिमान् व्यक्ति कभी स्वदेशके प्रति अनुरागी हो जीवन नष्ट नहीं करते। जो व्यक्ति स्वदेशमें विपद्में पड़कर भी स्थानान्तरका आश्रय नहीं करते, वह पशुतुल्य व्यक्ति नदी किनारेके वृक्षकी तरह मृत्युकी गोदमें अवस्थान करते हैं। कपोतने अपनी स्त्रीकी ऐसी बात सुनकर भविष्यचिन्तासे व्याकुल हो कहा, हे प्रियतमे! वह पक्षी हमलोगोंके लिये किसी तरह भी भयहेतुक नहीं है। दूसरे दिन फिर वह पक्षी प्रातःकाल होते आकर कपोतमिथुनके घोंसलेके द्वारपर बैठकर सन्ध्या पर्य्यन्त रह सूर्य्यके अस्त हो जानेपर वहांसे चला गया। उसके चले जानेपर कपोतीने बाहर निकलकर पतिसे कहा, हे प्रिय! जबतक वह मृत्युरूपी श्येन यहां नहीं

आता है, उसी समयमें ही भागना कर्त्तव्य है। उसकी भीतर ही आप मुझे छोड़कर स्थानान्तर में जा अपने प्राणकी रक्षा करें। हे नाथ! आपकी जीवनकी मैं प्राण देकर भी रक्षा कर सकनेपर कृतार्था हूंगी। कारण, आप पुरुष हैं; आत्मरक्षा करनेपर फिर धन, दारा गृहादि सभी पा सकते हैं। इसके दृष्टान्त राजा हरिश्चन्द्र हैं, सब खोकर भी उन्होंने फिर लाभ किया था। इस आत्माको प्रियबन्धुलोग महत् धन और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्व्वर्गका साधक कहकर निर्देश करते हैं। आत्माके कुशलसे ही संसार कुशलमय जान पड़ता है। बुद्धिमान् व्यक्ति यशके साथ साथ आत्माके कुशलकी प्रार्थना करते रहते हैं। जिस कुशलमें यशका सम्पर्क नहीं, ऐसे कुशलकी अपेक्षा अकुशल ही उत्तम है। नीतिके अनुसार कार्य्य करनेसे, वैसा कुशलान्वित यश मिलता है। हे नाथ! सम्प्रति नीतिकी पर्य्यालोचना-कर देखनेसे, इस मुहूर्त्तमें ही यहांसे प्रस्थान करना हमलोगोंका कर्त्तव्य है; नहीं तो जान पड़ता है, कि प्रभातकालमें ही फिर उससे निस्तार न पावेंगे। कार्त्तिकेयने कहा, बुद्धिमती पत्नीके इस तरह बारबार कहनेपर भी कपोतने मायाच्छन्नकी तरह उस स्थानको परित्याग नहीं किया। इधर दूसरे दिन प्रातःकाल ही वह महाबली श्येनपक्षी कुछ खाद्य संग्रहकर, वहां उपस्थित हो, कपोतमिथुनका निर्गमपथ रोधकर बैठ गया और उस चतुर श्येनपक्षीने कुछ काल वहां रहकर कपोतसे कहा, अरे कपोत! तू नितान्त निर्व्वीर्य्य है, तुझे धिक् है। रे दुर्म्मति! शीघ्र मेरे साथ युद्धकर या बाहर निकलकर मेरे अधीन हो; नहीं तो यहां ही रहकर अनाहारसे मर जायगा। यह निश्चय नहीं है, कि मैं अकेला तुम दोनोंके साथ संग्राममें जय या पराजय हूंगा; इस समय तुम दोनो मेरे साथ युद्धकर अपने स्थानकी रक्षा करो या स्वर्गमें जाओ। यदि तू अपनेको दुर्व्वल समझकर भी पौरुषका आश्रय करता है, तो विधाता ही तेरे सहाय होंगे। पारावत श्येनकी ऐसी बात सुन और पत्नीकी उत्तेजनासे उत्साहित हो घोसलेसे बाहर निकलकर उससे युद्ध करने लगा। उस समय कपोतका शरीर क्षुधासे और तृष्णासे नितान्त अवश होनेकी वजह सहज ही वह श्येनपक्षी कपोतको चरणमें और कपोतीको चञ्चुपुटसे धर, भक्षण योग्य निरुपद्रव स्थान ढूंढता हुआ आकाशपथमें उड़ा। राहमें कपोतीने स्वामीसे कहा,—हे नाथ! मुझे स्त्री समझ मेरी बात आप अग्राह्य करते थे; आज उसका फल भोग रहे हैं। मैं अबला क्या करूंगी? हे प्रियतम! इस समयमें जो कहती हूं,—मुझे स्त्री समझ उपेक्षा न कर यदि उस हितवाक्यका प्रतिपालन करें, तो

अब भी निष्कृति पा सकते हैं और उससे लोग कभी आपको स्त्रैण न कहेंगे। हे नाथ! जबतक यह श्येन किसी स्थानमें जा हमलोगोंको सुखसे रखे, तबतक आप चञ्चु-पुट द्वारा दंशन कीजिये। पत्नीकी बात सुनकर कपोतने श्येनके पैरमें काटना आरम्भ किया। श्येनपक्षीने दंशन यन्त्रणासे अधीर हो चीत्कार किया। उसी समय कपोती उसके मुंहसे पतिता हुई और चीत्कारके समय पादङ्गुलि श्लथ होनेसे कपोतने भी मुक्ति पाई। अतएव विपन्न हो-कर भी पौरुष परित्याग न करना चाहिये। देखो, इन कपोतमिथुनने शत्रुकवलित होकर भी आकाशपथमें उस शत्रुको पादपीड़न दे चञ्चुपुटसे भी मुक्ति पाई। अदृष्टवान् पुरुषके पौरुषहीन होनेपर उसका अदृष्ट भी फल प्रदान नहीं करता, इसलिये प्राज्ञ व्यक्तिगण विपद् समयमें भी उद्यम परित्याग नहीं करते। इस तरह कपोत-युगलने मृत्युमुखसे रक्षा पा कुछ काल सुखसे बिता, जहां मरनेसे काशी करस्था होती है, उस मुक्तिक्षेत्र अयोध्यामें सरयूके किनारे प्राणत्याग किया। इसके उपरान्त कपोत पुनर्जन्ममें विद्याधरराज मन्दारदामका पुत्र परिमलालय नामसे विख्यात हुआ। यह परिमलालय सब विद्या और कलामें पारदर्शी और बाल्या-वधिसे शिवभक्तियुक्त थे। उन्होंने जिते-न्द्रिय और नियमी हो मन ही मन एक पत्नीव्रताचरणका सङ्कल्प किया था। लोग परस्त्रीमें आसक्त होनेपर आयुः, कीर्त्ति, सुख और बलको खो देते हैं, सुतरां बुद्धिमान् कभी परस्त्रीमें अनुरागी न होंगे। उन्होंने जन्मान्तरीन संस्कारसे और भी एक नियम धारण किया था, कि जबतक शरीरमें कोई रोग न आवे और इन्द्रियचय अपने अपने कार्य्यकारी रहें, तबतक काशीधाममें चतुर्व्वर्गसाधक पुण्यालय और परमानन्दजनक भगवान् विश्वेश्वरकी पूजा किये बिना कुछ भोजन न करूंगा। मन्दारदामतनय विद्याधर परिमलालय यह सब नियम ग्रहणकर शिवलिङ्गकी दर्शनवासनासे काशीमें उपस्थित हुए। इधर कपोती नागराज रत्नद्वीपकी कन्या रत्नावली नामसे जन्म ग्रहणकर रूप, गुण, शिक्षा और स्वभावमें सब नागतनयाओंमें श्रेष्ठा हुई थी। प्रभावती और कलावती नाम्नी दो सखी सदा छायाकी तरह उस-का अनुसरण करती थीं। रत्नाव-लीको क्रमशः यौवनदशा आनेपर आन-सञ्चार हुआ, पिताको परम शैव देखकर स्वयं उसने भी कठोर व्रत धारणकर पितासे कहा, हे पितः! मैं प्रतिदिन सखियोंके साथ काशीमें अनादि देवका दर्शन किये बिना वाक्य व्यवहार न करूंगी। इसपर पिताकी सम्मति पा रत्नावली सखियोंके साथ प्रतिदिन का-

शीघ्र महादेवकी पूजाकर घर लौटकर मौनभाव परित्याग करती थी। वह स्वरचित माल्यसे शिवलिङ्गको विभूषितकर नित्य उनके पास उनके सन्तोषार्थ सखीदयके साथ मिलकर अति आनन्दके साथ मण्डलाकारमें नृत्य, सुमधुर गीत और तालखयसंयोगसे वीणा, वेणु और मृदङ्गका वाद्य करती थी। उन्होंने इस तरह भगवान्‌की आराधना करती करती एक दिन वैशाखकी तृतीयाको उपवासकर ईश्वरके पास नृत्य, गीत और रात्रि जागरण किया, फिर दूसरे दिन वह सब प्रभातके समय चतुर्थीको पिलपिलातीर्थमें स्नानकर महादेवको पूजाके उपरान्त आलस्यवश वहीं घोर निद्रामें आविर्भूता हो पड़ीं। उन कन्याओंके निद्रित होनेपर भगवान् महादेव, वहांके लिङ्गसे त्रिनयन, चन्द्रशेखर, कर्पूरशुभ्र देह, जटाराजिविराजित, नीलकण्ठ, उरगभूषण और उरगोपवीती हो, वामाङ्ग शक्तिमयकर, निष्क्रान्त हो, उनसे सम्बोधनकर कहने लगे,—हे कुमारिगण! मैं आया हूं, तुम सब निद्रा परित्याग करो, यह शिववाक्य सुनते ही उन्होंने उठ शय्यात्याग, चक्षुमार्ज्जनादि करती हुई ससम्भ्रमसे दृष्टिनिक्षेप करते ही सामने अभीष्टदेवको देखा। तब वह समझकर उन्हें बारबार प्रणाम करती हुई स्तव करने लगीं। नागकन्यागणने कहा, हे प्रभो! हे सर्व्वग! हे ईशान! हे सर्व्वद! आप त्रिपुर और अन्धकके अन्तक हैं; हे विश्वनाथ! हे विश्वाश्रय! हे विश्ववन्दित! हे विश्वपालक! आपने कामका गर्व्व खर्व्व किया है। हे भक्तवत्सल! हे प्रमथनाथ! आपके जटाजूट गङ्गासलिलसे सदा सिक्त होते हैं और आपके शिरोभूषण शशिकी किरणसे त्रिभुवनके उद्भासित होते हैं। हे काशीनाथ! पार्व्वतीने तपोबलसे आपका वामाङ्ग लाभ किया है; आपकी देह फणितभूषणसे भूषित है। हे श्मशानवासिन्! हे विश्वपते! हे शर्व्व! आप काशीवासियोंको मुक्ति दान करते हैं। हे गीतविशारद! हे उग्र! हे ईश! नृत्यकार्य्य आपका अति सन्तोषकर है। हे शूलपाणी! हे त्रिलोचन! आप प्रणवकी आवासभूमि, तेजके आधार और आप होके सन्तुष्ट होनेपर भक्तोंका कोई अभीष्ट दुर्लभ नहीं रहता; आप बारबार जययुक्त हों स्वयं विधि सब विधि जानकर भी आपका सम्यक् स्तव करना नहीं जानते। हे देव! आपका स्तव करनेमें देवगुरुका भी वाक्य निःसृत नहीं होता; वेदचतुष्टय भी आपसे यथार्थ ज्ञात नहीं हैं; मन भी आपको स्वविषय कहनेमें नितान्त अपारक है; हे नाथ! हम बालिका, क्या जानें? बारबार आपको नमस्कार करती हैं। कन्याओंके इस तरह अनादि देवकी स्तुतिकर भूतलमें दण्डवत् प्रणाम करनेपर, भगवान् आशु-

तोषने उन्हें भूमिसे उठाकर कहा, हे कुमारिगण! मन्दारदाम विद्याधरके तनय परिमलालय तुम लोगोंका पाणिग्रहण करेंगे। तुम सब विद्याधरलोकमें यथेच्छासे विषयसुख भोगकर, फिर तुम तीनों, अपने पतिके साथ इस आनन्दधाममें आ परम सिद्धिलाभ करती हुई अन्तमें निर्वाणपद पाओगी। तुम सब और परिमलालय पूर्व्व जन्ममें मेरी बहुत आराधनाकर इस समय उत्तम योनि पा सद्भक्तिरसमें हृदय आप्लुत करते हो। मैं कहता हूं—तुम्हारे कण्ठ निःसृत इस पवित्र स्तवसे जो व्यक्ति मेरी उपासना करेंगे, उनका सब अभिलाष पूर्ण होगा। जो मनुष्य, प्रातःकाल भक्तिके साथ इस स्तवका पाठ करेंगे, उनका रात्रिकृत पाप और जो सायंकालमें पाठ करेंगे, उनकी दिवार्जित पापराशि उस मुहूर्त्तमें ही विनष्ट होगी। नागबालागण महादेवकी ऐसी बात सुनकर हाथजोड़ उनसे कहने लगीं, हे देव! हे करुणामय! हे कल्याणाकर! हमने पूर्व्वजन्ममें आपकी किस तरह सेवा की थी और हे भव! उन सुकृती विद्याधरका और हम तीनोंका पूर्व्वजन्मका वृत्तान्त अनुग्रहकर कहिये। भगवान् नागकन्याओं द्वारा इस तरह कथित हो उन लोगोंका और परिमलालयके पूर्व्वजन्मका वृत्तान्त कहने लगे। महादेवने कहा हे नागसुतागण! तुम सब अपना और विद्याधरतनयका पूर्व्वजन्म वृत्तान्त सुनो। रत्नावलि! तुम और विद्याधर परिमलालय, दोनो पूर्व्वजन्ममें एक कपोतमिथुन थे; तुम दोनो मेरे इस प्रासादमें वास करते और नित्य उड़नेकी समय इस देवालयका बहुतबार प्रदक्षिणा करते हुए पक्षवायु द्वारा इसपरकी धूलिराशि परिष्कार करते और इस विचित्र चतुर्मुखतीर्थमें बारबार स्नान और उसीका सलिल पानकर निरन्तर कलरवसे मेरा सन्तोष विधान करते थे। तुम दोनो आनन्दगद्गदभावसे वहांके शैवगणका क्रियाकलाप देखते और उनके कण्ठोच्चारित मेरा नामामृत पान और कई बार मङ्गलारात्रिका दर्शन कर सुखी होते थे। तिर्य्यकयोनि होनेकी वजह अन्तकालमें यहां न मरकर, तुम दोनोंने जन्मान्तरमें काम्यप्रद सरयूतीर्थमें देहत्याग किया। उस उत्तम स्थानमें देह पतनके प्रभावसे तुम नागराजकी दुहिता हुई हो और तुम्हारे स्वामीने विद्याधरतनय होकर जन्म लिया है और इस जन्ममें नागराजपत्नीकी कन्या प्रभावती और उरगपति चित्रशिखकी तनया कलावतीका पूर्व्ववृत्तान्त सुनो। वर्त्तमान जन्मके पहले तृतीय जन्ममें वह महर्षि नारायणकी कन्या थीं। कन्याद्वय सुशीला और प्रीतिसम्पन्न थीं। फिर पिता नारायण द्वारा प्रदत्त हो आमुष्यायणके पुत्र ऋषिकुमार नारायणका पतीत्व लाभ किया। एक दिन किशोर-

तनया वह ऋषिकुमार समिध संग्रहके लिये वनप्रदेशमें विचरण करते थे ; उसी समय अलक्षित एक सर्पके काटनेसे उन्होंने पञ्चत्व पाया। तब भवानी और गोमती नाम्नी नारायण कन्याद्वय वैधव्यदुःखको प्राप्त हो दीनभावापन्न हुईं। इसीलिये उस अवधिसे कोई व्यक्ति देवता और नदी नामसे अभिहिता कुमारीका पाणिग्रहण नहीं करते। एक दिन इन दोनोंने पिताके सुरम्य आश्रयमें रह दूसरेका अप्रदत्त रम्भाफल स्वयं स्वेच्छासे भक्षण किया था। उस फलके ग्रहणपापका यथाविधि प्रायश्चित्त करके भी चोरीके अपराधसे मध्यजन्ममें वानरी हुई थीं ; किन्तु विधवा दशामें सदा सच्चरित्रा रहनेकी वजह यह इनका वानरीजन्म वाराणसीमें ही हुआ। इधर वह नारायण पितृभक्त होनेकी वजह काशीमें पूर्व्वोक्त कपोत होकर पैदा हुए थे। सुतरां परिमलालय तुम दोनोंके स्वामी थे और वर्त्तमान जन्ममें भी उन्हींको पतिरूपसे पाओगी। इस मेरे आलयके पास एक शाखासमन्वित अति उन्नत वटवृक्ष था ; यह दोनो वानरदशामें चन्द्रस्रोतस्विनी तीर्थमें स्नान और उसका जल पानकर उस वृक्षमें वास करतीं और समय समयपर स्वजातिसुलभ चाञ्चल्यके अधीन हो इस गृहका प्रदक्षिणाकर लिङ्ग दर्शन सुख भी लाभ करती थीं। एक दिन इस वटके समीप विचरण कालमें एक योगिरूपधारी धूर्त्त रज्जुद्वारा इनको बांधकर घर ले गया और इनके द्वारा भिक्षार्ज्जन करनेकी वासनासे इन्हें नाच सिखाने लगा। कुछ दिन वहां रह पञ्चत्वको प्राप्त हो, काशीवास, शिवालय-प्रदक्षिण और शिवसेवा-जनित पुण्यसे यह वानरीद्वयने नागकन्यारूपसे जन्मग्रहण किया। इस समय यह भी उन परिमलालयको पतिरूपमें पाकर अनुपम सुखभोग करती हुई अन्तमें इस क्षेत्रमें निर्व्वाणपद पावेंगी। काशीमें अल्पमात्र भी अनुष्ठित सत्कार्य्य मोक्षफल प्रदान करता है। जगत्में काशीकी अपेक्षा श्रेष्ठ पुरी नहीं है। यहां सर्व्वापेक्षा श्रेष्ठलिङ्ग प्रणवेश्वर और उनसे भी त्रिलोचन लिङ्गके श्रेष्ठ होनेकी वजह मैं इस लिङ्गमें अधिष्ठित रह भक्तोंको मुक्त करनेके लिये ज्ञानका उपदेश करता हूं। इसलिये काशीमें बहुप्रयास करके भी मनुष्य त्रिलोचनकी पूजा करें। कार्त्तिकेयने कहा, हे मुने! भगवान् आदिदेव जगदाधार विराटरूप धारणकर वहीं अन्तर्हित हुए। इधर नागकन्या अपना अपना वृत्तान्त सविशेष जानकर घर जा अपनी अपनी मातासे कहकर कृतार्थ हुईं। वैशाख मासमें इस विरजक्षेत्रमें शिवके पास प्रभुकी महायात्रा उपस्थित हुई थी ; उसमें विद्याधरगण और नागगण, आत्मीयवर्गसे परिवृत हुए थे और शिवके आदेशमत दोनो पक्षमें

वंशावलीका परिचय ले परिमलालयको वह तीनो कन्या प्रदान की गई। मन्दार-दाम पुत्रवधूत्रयको पाकर और रत्नदीप, पद्मी और त्रिशिख यह ऐसा जामाता पाकर परम सन्तुष्ट हुई। यह विवाह दोनो पक्षका आनन्दजनक हुआ था। वह लोग यह उत्सव समाप्तकर, शिवगुणानुवाद करते हुए अपने अपने घर गये। फिर परिमलालय पत्नीत्रयके साथ बहुकाल यथाभिलषित विषय भोगकर काशीमें आये। वहां उन्होंने भगवान्के पास रह नृत्यगीतादि द्वारा उनकी आराधनाकर काल उपस्थित होनेपर शिवसायुज्य लाभ किया। कार्त्तिकेयने कहा, कलिकालमें महादेव द्वारा त्रिलोचनका माहात्म्य गोपित रहनेकी वजह अल्पायु मनुष्य उनकी उपासना नहीं करते। पापीके भी कर्णकुहरमें इस त्रिलोचन माहात्म्यके प्रविष्ट होनेपर, उनकी पापराशि दूर होती और वह सद्गति पाते हैं।

षट्सप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितम अध्याय।

केदार-महिमा।

पार्व्वतीने कहा, हे नाथ! हे भक्त-वत्सल। आपको प्रणाम करती हूं, आप भक्तोंके प्रति दया प्रकाशकर केदारेश्वर महिमा कहिये। हे नाथ! इस लिङ्गमें आप अत्यन्त प्रीतिमान् हैं और उनके भक्त होनेसे विशुद्ध बुद्धि मिलती है, सुतरां पहले उनका माहात्म्य सुननेकी इच्छा हुई है। महादेवने कहा, हे उमे! मैं कहता हूं, सुनो। इसके सुननेसे पापीका पाप दूर होता है। जिनके हृदयमें केदारेश्वरको देखनेका अभिलाष हो, वह व्यक्ति आजन्मकृत पापसे मुक्ति पाते हैं। जो केदारेश्वरके दर्शनके अभिलाषी हो घरसे यात्रा करते हैं, उनका जन्मद्वयार्ज्जित पाप और जो केदारेश्वरदर्शनके उद्देशसे अर्द्धेक पथ अतिवाहन करते हैं, उनके तीन जन्मके पाप शिराश्रय उनकी देहको उस मुहूर्त्तमें ही छोड़कर भागते हैं। यदि मनुष्य घरमें रहकर भी सायंकालको "केदार" नाम उच्चारण करें, तो उन्हें केदारेश्वरकी "यात्रा"का पुण्य होता है। केदारनाथके भवनके अगलिभागका दर्शनकर वहांके तीर्थका जलपान करनेसे जीवकी सप्तजन्मार्ज्जित पापराशि दूर होती है। "हरपाप" ह्रदमें नहाये हुए व्यक्ति द्वारा केदारेश्वरका दर्शन होनेसे, वह दर्शकको कोटिजन्मके पापसे विमुक्त करते हैं। यदि कोई हरपाप ह्रदमें स्नानादि कार्य्य समाप्तकर केदारेश्वर लिङ्गकी मानस पूजा करते हुए एकबार भी उन्हें प्रणाम करें, तो उन्हें देहान्तमें मुक्तिपद मिलता है। श्रद्धापूत हो इस हरपाप ह्रदमें श्राद्ध करनेसे उनके सप्त पुरुष उद्धार होते हैं और

फिर उन्हें अपने मैं लोकमें ले आता हूं। हे अपर्णे! पूर्व्वरथन्तरकल्पमें यहां जो एक व्यापार हुआ था, तुम मुझसे वह विषय अवधानपूर्व्वक सुनो। उज्जयनीवासी एक ब्राह्मणकुमार पिताके साथ ब्रह्मचर्य्य अवलम्बनकर इस काशीमें आ विचरणशील, जटाधारी भस्माच्छादितदेह, मेरा लिङ्ग सेवी, भिक्षामात्रोपजीवी गङ्गामृतपायी, शैव महात्माओंका दर्शनकर आनन्दित हो, इस क्षेत्रमें ही आचार्य्य हिरण्यगर्भके पास उपदिष्ट हुए। ब्राह्मणतनयका नाम वशिष्ठ था; वह गुरुका उपदेश या पाशुपतव्रत धारणकर सब पाशुपतगणमें श्रेष्ठ हुए। वह प्रतिदिन हरपाप ह्रदमें स्नानकर फिर भस्म द्वारा स्नान करते और त्रिसन्ध्या केदारेश्वरकी अर्च्चना करते थे। गुरुदेव और केदारेश्वरमें एक मुहूर्त्तके लिये उनकी भेदबुद्धि नहीं थी। द्वादश वर्ष वयसके समय वह गुरुके अनुचर हो, केदारेश्वरके उद्देशसे हिमालय गये, वहां एकबार जानेसे जीवको कोई शोक नहीं रहता और सुकृतिगण वहांका लिङ्गरूप सलिल पानकर लिङ्गरूपत्व पाते हैं। उन गुरुशिष्योंके असिधार नामक पर्व्वत पर्य्यन्त जानेपर, गुरु कालग्रासमें पतित हुए और उसी क्षण मेरे अनुचरगण उन्हें विमानमें आरूढ़कर कैलासमें ले आये। इस कारण केदारेश्वरदर्शनेच्छासे यात्राकर अर्द्धपथमें प्राणत्याग होनेसे, मनुष्य अन्तःकाल कैलासवासी होते हैं। तब वशिष्ठने अपने गुरुकी ऐसी घटना देखकर केदारेश्वरको ही लिङ्गश्रेष्ठ निश्चय किया और केदारेश्वरयात्राकर काशीमें प्रत्यागत हो उन्होंने इस नियमका आश्रय किया, कि जबतक जीवित रहूंगा, तबतक प्रति चैत्रमासमें केदारेश्वरकी यात्रा करूंगा। उस अवधिसे आजन्मब्रह्मचारी तपोधन वशिष्ठने काशीमें वासकर परमानन्दसे एकाधिक षष्टिबार केदारेश्वरकी यात्रा की थी। इसके उपरान्त चैत्रमास आनेपर फिर वशिष्ट केदारेश्वरकी महायात्राका उद्योग करने लगे। यह देखकर अनुचरवर्गके उनका वार्द्धक्य देख राहमें मृत्युकी आशङ्कासे दयार्द्र हृदय हो बारबार निषेध करनेपर भी उन महामति तपोधनने कुछ भी निरुत्साह न होकर सोचा, कि यदि अर्द्धपथमें ही मरण हो, तो अति उत्तम है; उससे गुरुकी तरह सद्गति पा सकूंगा। हे पार्व्वति! पुण्यात्मा शूद्रान्नस्पर्शी उन तपोधन वशिष्ठका ऐसा दृढ़व्रत देख, मुझे परम सन्तोष हुआ और मैंने उन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर कहा, हे दृढ़व्रत! मैं वही केदारेश्वर हूं, तुमपर सन्तुष्ट हूं। तुम अभिलषित वर ग्रहण करो। वशिष्ठके "स्वप्न मिथ्या होता है" कहकर वर ग्रहण न करनेपर फिर मैंने उनसे कहा, अपवित्र व्यक्ति मिथ्या स्वप्न देखते

हैं; तुम अति पवित्र और जितेन्द्रिय हो, तुम्हें स्वप्न मिथ्या है कहकर शङ्का करना उचित नहीं। मैं प्रसन्न होकर वर देने आया हूं, तुम प्रार्थना करो। मेरा कुछ भी तुम्हारे अदेय नहीं है। मेरी यह बात सुनकर ब्राह्मणने कहा, -हे देवदेव! मेरे प्रति आप जैसे सन्तुष्ट हुए हैं, उसी तरह मेरे अनुचरवर्गपर भी आपको अनुग्रह हो, यही मेरी प्रार्थना है। हे देवि! तब मैंने वशिष्ठकी ऐसी परोपकारबुद्धि देख, अतिशय आनन्दित हो, उनकी बातपर "ऐसा ही होगा" कहकर स्वीकृत किया और कहा,— तुम्हारा यह परोपकारानुष्ठानपुण्य द्विगुणतर वर्द्धित हुआ; इस समय इस पुण्यके फलके लिये वरकी प्रार्थना करो। तब तपोधन वशिष्ठने कहा हे नाथ! आप हिमालयसे काशीमें आकर अवस्थान करिये। मैं वशिष्ठकी वाक्यसे उस अवधिसे हिमालयमें अंशरूप रख इस काशीमें ही अवस्थान करता हूं! इसके उपरान्त प्रातःकाल देवर्षिगणको साथ ले वशिष्ठको आगे किये हुए सबके सामने उनपर असीम दया दिखा, मैं हरपाप ह्रदमें अवस्थित हुआ और मेरे संस्पर्शसे प्रसिद्ध हरपाप ह्रदमें वशिष्ठके अनुचरगणने भी स्नानकर उस देहमें ही सिद्धि पाई। मैं इस धाममें केदारेश्वर लिङ्गमें हूं; विशेष, कलिकालमें हिमालयस्थ केदारेश्वर लिङ्गके दर्शनकी अपेक्षा काशीमें केदारेश्वरका दर्शन करनेसे सप्तगुणाधिक पुण्य सञ्चय होता है। इस काशीमें भी हिमालयकी तरह गौरीकुण्ड हंसतीर्थ और मधुस्रवागङ्गा उस भावसे ही विराज रही हैं और यह स्वाभाविक, स्पर्शमात्रसे ही सप्तजन्मपापनाशक, हरपापतीर्थ, काशीक्षेत्रमें गङ्गादेवीके साथ सङ्गम हो भक्तोंकी कोटि जन्मसञ्चित पापराशि दूर करती हैं। पहले यहां दो दांड़काक अन्तरीक्षमें युद्ध करते करते निपतित हो, सबके सामने ही उसी मुहूर्त्तमें उन्होंने हंसरूप पाया था इसलिये इसका नाम हंसतीर्थ हुआ है और हे गौरि! पहले तुमने इस ह्रदमें स्नान किया था इसलिये इसका पवित्र "गौरीकुण्ड" भी नाम है। यहां अमृतमयी गङ्गादेवी अमृतक्षरणकर जीवका महाअन्धकार और कितने ही जन्मकी जड़ता दूर करती हैं, इस लिये इसका मधुस्रवा नाम भी विख्यात है। पहले मानस-सरोवरने यहां कठोर तपोनुष्ठान किया था इस लिये इसका नाम मानसतीर्थ भी है। इस तीर्थमें नहाये हुए व्यक्तिमात्रको ही मुक्ति पाते देख देवगणने ईर्ष्यापरतन्त्र हो मेरे पास आकर कहा, हे देव! इस केदारकुण्डमें जो सब व्यक्ति स्नानकर मुक्त होते हैं, इससे वर्ण और आश्रमधर्म्मियोंके उच्छेद होनेसे सृष्टिका लोप होता है; सुतरां आप ऐसा आदेश